प्रकाशक
फूलचन्द गुप्त,
संचालक
सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा

भूमिका

हिन्दी के रीति काल का अध्याय कोई आकस्मिक घटना न थी। वह एक प्राचीन परम्परा का नियमित विकास थी। उसकी प्रेरक शक्तियाँ संस्कृत साहित्य से प्राप्त हुई थीं।

हिन्दी के रीति-काल में मुख्यतः तीन प्रकार की रचनाएँ रची गईं—शृंगार परक, रचनाएँ, रीति-ग्रन्थ तथा नायिका-भेद कथन। तीनों ही के पीछे संस्कृत साहित्य की परम्पराएँ थीं। यथा—

हिन्दी के शृंगार साहित्य के पीछे तीन परम्पराएँ थीं:—(१) गाथा सत्तसई, अमरुक शतक तथा आर्या सप्तशती के शृंगार मुक्तक और शृंगार तिलक, शृंगार शतक तथा चौर पंचाशिका आदि के ऐहिक मुक्तक। (२) दुर्गा सप्तशती, चंडी शतक आदि स्तोत्र ग्रन्थ, शिव पार्वती, राधा कृष्ण की शृंगार लीलाओं के वर्णन और बंगाल बिहार में प्रचलित राधा कृष्ण की भक्ति से सम्बन्धित छन्द (१२ वीं शती से १४ वीं शती)। और (३) कामशास्त्र की चिन्ताधारा, वात्सायन के कामसूत्र के पश्चात् रति रहस्य अनंग रंग आदि अनेक ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। ऐहिक शृंगार मुक्तकों, शिव और कृष्ण भक्ति के स्तोत्रों और नायिका भेद के ग्रन्थों पर इनकी स्पष्ट छाप थी।

हिन्दी के रीति ग्रन्थों के प्रेरक संस्कृत साहित्य-शास्त्र के विभिन्न सम्प्रदाय (रस सम्प्रदाय, अलंकार सम्प्रदाय, रीति सम्प्रदाय, ध्वनि सम्प्रदाय तथा वक्रोक्ति सम्प्रदाय) थे।

भरतमुनि द्वारा प्रणीत तथा धनंजय, रुद्रट, विश्वनाथ, भानुदत्त आदि आचार्यों द्वारा व्यवस्थित नायिका-भेद की परम्परा चली ही आरही थी; उससे हिन्दी साहित्य के कवियों को इस ओर पर्याप्त प्रेरणा प्रदान की।

संस्कृत साहित्य की रीति परम्पराओं का क्रम १७ वीं शती के अन्त तक अथवा १८ वीं शती के प्रथम पाद तक चलता रहा। हिन्दी की ये परम्पराएँ संस्कृत से उत्तराधिकार रूप में प्राप्त हुईं। हिन्दी का रीति काल १७ वीं शती के मध्य से लेकर १६ वीं शती के मध्य तक ठहरता है

आचार्य पं रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार हिन्दी के आदि कवि पुष्प ने संवत् ७७० (८ वीं शती का प्रारम्भ) में कोई अलंकार ग्रन्थ लिखा था, किन्तु अब उसका कोई पता नहीं है। हिन्दी का सर्वप्रथम रीति ग्रन्थ कृपाराम कृत 'हिततरंगिणी' है। उसका निर्माण काल १६ वीं शती का मध्य ठहरता है।

सूरदास की 'साहित्य लहरी' (रचना काल १६ वीं शती का उत्तरार्द्ध) में रीति कालीन प्रवृत्तियों के बीज मिल जाते हैं। उसके कूटों में अलंकारों के उदाहरण मिल जाते हैं। किन्तु उसकी प्रामाणिकता सन्दिग्ध है।

अष्टछाप के अन्य कवि नन्ददास ने अपने किसी मित्र के हितार्थ नायिका भेद लिखा था। तुलसीदास की बरवै रामायण में यद्यपि लक्षण नहीं हैं, तथापि उसमें भी अलंकारों के उदाहरण उपस्थित करने की ओर झुकाव है।

नरहरि कवि के साथ अकबर के दरबार में आने जाने वाले कवि करनेस के 'कर्णाभरण' 'श्रुति भूषण', और 'भूप भूषण' नामक अलंकार सम्बन्धी तीन ग्रन्थ लिखे थे। इतना सब होने पर भी कसी ने संस्कृत साहित्य शास्त्र में निरूपित का काव्यांगो का पूरा

परिचय नहीं कराया था। यह काम केशवदास ने (समय सन् १५५५ से सन् १६१७ तक) किया।

केशवदास ने भामह, उद्भट आदि संस्कृत के प्राचीन आचार्यों का अनुसरण किया। केशवदास चमत्कार वादी कवि थे। केशवदास ने 'कविप्रिया' के अन्तर्गत 'अलंकार' के दो 'सामान्य' और 'विशेष' दो भेद किए। 'सामान्य' के अन्तर्गत वर्ण्य विषय और विशेष के अन्तर्गत वास्तविक अलंकार रखे। परवर्त्ती हिन्दी के रीति कवियों ने इनके द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण नहीं किया।

हिन्दी में रीति ग्रन्थों की परम्परा केशव की 'कवि प्रिया' के पचास वर्ष पीछे चली और वह भी एक भिन्न आदर्श को लेकर। यह परम्परा संस्कृत के परवर्त्ती आचार्यों-गोवर्द्धन, मम्मट, विश्वनाथ, पंडितराज जगन्नाथ आदि के मार्ग पर चली और इसके निर्देशक थे चिन्तामणि त्रिपाठी। चिन्तामणि त्रिपाठी ने संवत् १७०० के आस पास 'काव्य विवेक', 'कवि-कुल-कल्पतरु' और 'काव्य-प्रकाश' ये तीन ग्रन्थ लिख कर काव्य के सब अंगों का पूरा निरूपण किया और पिंगल या छन्द शास्त्र पर भी एक पुस्तक लिखी।

हिन्दी के रीति-काल का प्रारम्भ किससे मानना चाहिए—केशव दास से अथवा चिन्तामणि त्रिपाठी से इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। इस विवाद में न पड़ कर हमें तो इतना ही निवेदन करना है कि हिन्दी के रीति-काल की प्रेरक शक्तियाँ संस्कृत से प्राप्त हुईं और इस काल में हिन्दी साहित्य शास्त्र सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ रचे गए

इस काल के कुछ कवियों ने लक्षण और उदाहरण देकर रचनाएँ लिखीं और कुछ ने वैसे ही, अथवा यथास्थान केवल उदाहरण ही लिखे। 'सेनापति' ऐसे ही, द्वितीय श्रेणी के, कवि थे। प्रस्तुत

पुस्तक में सेनापति के काव्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया गया है, ताकि पाठक-वृन्द को सेनापति के काव्य का मूल्यांकन करने में सरलता हो।

आगरा
१-१२-५२

विनीत
राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी

विषय-सूची

१—कवि-परिचय

'सेनापति' हिन्दी के उन कवियों में हैं जिनके जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में हमें बहुत कम मालूम है। कतिपय प्रचलित किंवदन्तियों के आधार पर ही इनके जीवन के विषय में थोड़ी बहुत बातें ज्ञात हो सकी हैं। सेनापति की लिखी हुई दो पुस्तकें मिलती हैं 'कवित्त-रत्नाकर' और 'काव्य-कल्पद्रुम'। 'कवित्तरत्नाकर' के दो-तीन छन्दों के आधार पर ही इनके सम्बन्ध में कुछ बातें मालूम हो सकी हैं अर्थात् इनका जीवन-वृत्त अन्तर्साक्ष्य पर ही अवलम्बित है, उसके सम्बन्ध में बहिर्साक्ष्य कुछ नहीं मिलता है। 'कवित्तरत्नाकर' का निम्नलिखित छन्द देखिए—

दीछित परसराम, दादौ है विदित नाम,
जिन कीने जज्ञ, जाकी जग में बड़ाई है।
गंगाधर पिता गंगाधर की समान जाकौं,
गंगा तीर बसत अनूप जिन पाई है॥
महाजानि मनि, विद्या दान हू कौ चिंतामनि,
हीरामनि दीछित तैं पाई पंडिताई है।
सेनापति सोई, सीतापति के प्रसाद जाकी,
सब कवि कान दै सुनत कविताई है॥

(पहिली तरंग छन्द संख्या ५)

उपर्युक्त कवित्त द्वारा हमारे सामने कई बातें आती हैं। सेनापति इनका उपनाम था, इनके वास्तविक नाम का पता नहीं चलता इन्होंने दीक्षित कुल में जन्म लिया था, अर्थात् वे ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम गंगाधर दीक्षित और बाबा का नाम परशुराम दीक्षित था। इनका जन्म अनूपशहर (जिला बुलन्दशहर उत्तर

प्रदेश) में हुआ था, तथा उनके पिता ने (किसी राजा अथवा बादशाह के द्वारा) अनूपशहर पाया था। बस, इससे अधिक सेनापति के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता है।

अनूपशहर में बड़गुज्जर राजाओं का शासन था। अनीयराय इन बड़गुज्जर राजाओं के प्रधान थे और इन्होंने ही अनूपशहर बसाया था। अनीयराय मुसलमान बादशाहों के सहायक थे। ये एक बार जहाँगीर के साथ शिकार पर गए हुए थे। वहाँ एक चीते ने जहाँगीर पर आक्रमण किया और अनीयराय ने जहांगीर की चीते से रक्षा की बादशाह उन पर प्रसन्न हुआ और उसने अनीयराय को अनूपशहर का परगना पुरस्कार स्वरूप प्रदान किया। इससे अधिक और कुछ नहीं मालूम इतिहास में इस बात का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है कि अनीयराय कौन थे। अनुमान लगाया जाता है कि सेनापति के पिता इन अनीयराय के दरबार में आते जाते थे और सेनापति भी अपने पिता के साथ अनूपशहर के राजा अनीयराय के यहाँ आते जाते होंगे।

'कवित्तरत्नाकर' के एक अन्य छन्द द्वारा भी इनके जीवन-वृत्त पर प्रकाश पड़ता है—

केतौ करो कोई, पैये करम लिख्योई, तातैं
दूसरी न होई, उर साई ठहराइयै।
आधी तैं सरस गई बीति कै बरस, अब
दुज्जन दरस बीच रस न बढ़ाइयै॥
चिन्ता अनुचित तजि, धीरज उचित,
सेनापति हूँ सुचित राजा राम गुन गाइयै।
चारि बरदानि तजि पाइ कमलेच्छन के,
पाइक मलेच्छन के काहे कौं कहाइयै॥

इस छन्द से यह ध्वनि निकलती है कि सेनापति किसी मुसलमान शासक के दरबार में आया जाया करते थे और मुसलमानों की दासता से इन्हें विरक्ति होगई थी। एक बात और थी, जहाँगीर

बादशाह के शासन-काल में अधिकांश बड़गुज्जर राजाओं ने इस-लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। सम्भव है सेनापति इन्हीं किसी हिन्दू राजा के दरबार में आते जाते हों। जो भी हो इतना हम निश्चय पूर्वक कह सकते हैं कि सेनापति उस समय हुए थे, जब भारतवर्ष में मुसलमानों का शासन पूर्णतया प्रतिष्ठित हो चुका था और बहुत करके जहाँगीर के शासन-काल में सेनापति जीवित थे।

आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इनका जन्म-काल 'संवत् १६४६ के आस-पास माना है। 'कवित्तरत्नाकर' के एक छन्द के आधार पर यह अनुमान समीचीन प्रतीत होता है। यथा—

संवत् सत्रह सै छ में संइ सियापति पाय।
सेनापति कविता सजी सज्जन सजौ सहाय॥
(पाँचवी तरंग ८६)

'कवित्तरत्नाकर' की रचना संवत् १७०६ में हुई और सम्भवतः यह उनका सबसे पिछला ग्रन्थ है। उमाशंकर शुक्ल के मतानुसार इस आधार पर इनकी मृत्यु १८ वीं शती के प्रथम चरण में मानी जा सकती है।

२—आविर्भाव-काल

मुसलमानों के भारतवर्ष में प्रतिष्टित हो जाने के फलस्वरूप यहाँ के जीवन में अनेक मुसलमानी प्रभाव पड़े। मुसलमान शासक अपने साथ शासकीय प्रभाव के अतिरिक्त धार्मिक प्रभाव भी लाए—वे तलवार के साथ साथ कुरान भी लाए और दोनों का ही यहाँ के जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। परिणामतः भारतवर्ष के राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक, प्रत्येक क्षेत्र में मुसलमानी प्रभाव परिलक्षित होने लगा।

दशवीं शती के अन्त अथवा ११ वीं शती के आरम्भ में जब भारतवर्ष पर मुसलमानों का सर्व प्रथम व्यवस्थित आक्रमण हुआ, इस समय देश का सामान्य स्वरूप संक्षेप में इस प्रकार था—

(१) समाज रूढ़िग्रस्त हो चुका था। विजातीय तथा अन्य मतावलम्बी के लिए उसमें कोई स्थान न रह गया था।

(२) बौद्धमत के सम्मिश्रण के कारण हिन्दू धर्म को एक नया बल मिल गया था। इसके द्वारा साधारण जन समुदाय की तुष्टि हुई और शिक्षित वर्ग को नवीन दार्शनिक दृष्टिकोण प्राप्त हुआ।

(३) गत पाँच सौ वर्षों की सुख-शान्ति के कारण आर्थिक जीवन समृद्ध था। चारों ओर धन-धान्य का बाहुल्य था।

(४) राजनीतिक ढाँचा जीर्ण-शीर्ण हो चुका था, तथा राष्ट्रीय भावना विलुप्त हो चुकी थी। विदेशी के विरुद्ध सामूहिक मोर्चा लेने की बात भी जाती रही थी।

(५) चारों ओर छोटे-छोटे राज्य थे। इनकी व्यवस्था भ्रष्ट सरदारों के हाथों में थी। सम्पूर्ण उत्तरी भारत में दुर्व्यवस्था एवं

अज्ञान का साम्राज्य था, स्वतन्त्रता-संग्राम के भारतवासी बिल्कुल तैयार न थे।

उधर पश्चिम के किनारों पर मुसलमान पहिले से ही आ चुके थे। ७ वीं शती में थल मार्ग द्वारा अरब वालों का भारत में आना प्रारम्भ हो गया था। वे हिन्दू राजाओं के कृपा पात्र बन कर धीरे-धीरे प्रचार भी करने लगे थे। सारांश यह है कि विदेशी आक्रमण के अनुकूल वातावरण तैयार हो रहा था। यही कारण है कि जब महमूद गजनवी ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया, तो उसे यहाँ के समस्त द्वार उन्मुक्त मिले। अस्तु! ८ वीं सदी से मुसलमानों का भारतवर्ष में जमना शुरू हुआ और १८ वीं शती तक वे यहीं शासन करते रहे। इस १ हजार वर्ष के मुसलमान कालीन समय को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) ८ वीं शती से १३ वीं शती तक—इस समय में मुसलमान शान्तिपूर्वक दक्षिण भारत में तथा युद्ध करके सिन्ध तथा उत्तरी-पश्चिमी भागों में बस चले थे।

(२) १४ वीं शती से १८ वीं शती तक। इस बीच में वे भारत के शासक बन कर रहे और लगभग सम्पूर्ण भारतवर्ष ने उनका प्रभुत्व स्वीकार किया।

मुसलमान शासकों की तलवार और सभ्यता का सर्वतोमुखी प्रभाव पड़ा और संक्षेप में भारतवर्ष की दशा इस प्रकार हुई—

(१) मुसलमानी शासन के हिन्दू समाज को संघर्ष-भावना से विमुख कर दिया।

(२) सूफी फकीरों के इश्क मजाजी ने यहाँ की जनता को काम-भावना की ओर प्रवृत्त किया।

(३) राधा-कृष्ण की रागानुगा भक्ति ने हिन्दुओं की धर्म-भावना की साधनात्मक पवित्रता में कमी की और शृंगार-भावना को एक प्रकार से नैतिक समर्थन प्रदान किया।

(४) फारसी और उर्दू साहित्य ने आशिक, माशूक, सुरा,

सुराही, वाला, साकी आदि का प्रचार किया। उर्दू की गजलों ने श्रृंगार-भावना को प्रोत्साहन दिया तथा उर्दू के कसीदों ने दरबारदारी का पाठ पढ़ाया।

(५) मुसलमानी शासन के वैभव और विलास ने कामुकता का प्रचार किया। काम-वर्द्धक रचनायें लिखकर कविगण पुरस्कार प्राप्त करते थे। फलतः समाज भी श्रृंगार की ओर झुक गया। इतना ही नहीं जवानी की गलतियां को किसी हद तक क्षम्य भी समझा जाने लगा—

इक भीजें चहलें परैं बूढ़ैं वहें हजार।
किते न औगुन जग करै नय वय चढ़ती वार—

—बिहारी,

(६) उन दिनों धर्म-भावना उतनी पवित्र नहीं रह गई थी, जितनी होनी चाहिए थी। परन्तु वास्तविक धर्म-भावना सर्वथा लुप्त भी नहीं हो गई थी। बिहारी के निम्नलिखित दोहा में ढोंगी भक्तों का उपहास है—

जपमाला छापैं तिलक सरै न एकौ कामु।
मन काँचै नाचै वृथा, साँचै राचै रामु॥

३—रीति-काल की प्रमुख प्रवृत्तियां

मुसलमानी शासन एवं भारतवर्ष के तत्कालीन सांस्कृतिक वातावरण के फलस्वरूप हिन्दी साहित्य में इस काव्य का सृजन हुआ, जिसे रीति-साहित्य कहा जाता है। हिन्दी-साहित्य के उस रचनाकाल को, जो सन् १६०० से सन् १८५० तक ठहरता है, रीति-काल के नाम से पुकारा जाता है।

रीति से तात्पर्य काव्य शास्त्रों के विभिन्न अंगों, रस, ध्वनि, अलंकार, काव्य के गुण-दोष आदि के विवेचन से होता है। हिन्दी साहित्य में सन् १६०० से लेकर सन् १८५० तक के समय में ऐसे ही रीतिवद्ध और रीतियुक्त ग्रन्थों की रचना हुई थी, इसी कारण उसे रीति काल कहा गया है। इन ग्रन्थों में काव्य के लक्षण, रस-निरूपण, भाव-भेद, नायक-नायिका-भेद, ध्वनि, अलंकार, पिंगल, काव्य के गुण-दोष आदि समस्त काव्यांगी की विशद चर्चा है। हिन्दी की रीति-रचना के पीछे संस्कृत के रीति साहित्य की प्रेरणा थी।

इस काल के अन्तर्गत लिखी गई शृंगार परक रीति-रचनाओं की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

१—रीति कालीन हिन्दी कविता की शृंङ्गारिकता का आधार 'रसिकता' और उसका उद्देश्य एन्द्रिय सुख की प्राप्ति है।

२—शृंगारिकता का स्वरूप प्रायः गार्हस्थिक ही रहा। परकीया के विविध स्वरूपों के वर्णन होने पर भी कविजनों ने स्वकीया प्रेम को ही श्रेष्ठ बताया। स्वकीया के प्रेम को उन्होंने 'सोने में सुगन्ध' कहा और परकीया को कुचालनी बताकर उसके प्रेम को कच्चा और अहितकर माना।

सुराही, बाला, साकी आदि का प्रचार किया। उर्दू की गजलों ने शृंगार-भावना को प्रोत्साहन दिया तथा उर्दू के कसीदों ने दरबारदारी का पाठ पढ़ाया।

(५) मुसलमानी शासन के वैभव और विलास ने कामुकता का प्रचार किया। काम-वर्द्धक रचनायें लिखकर कविगण पुरस्कार प्राप्त करते थे। फलतः समाज भी शृंगार की ओर झुक गया। इतना ही नहीं जवानी की ग़लतियों को किसी हद तक क्षम्य भी समझा जाने लगा—

इक भीजें चहलें परैं बूढ़ैं बहें हजार।
किते न औगुन जग करै नय वय चढ़ती बार-

—विहारी,

(६) उन दिनों धर्म-भावना उतनी पवित्र नहीं रह गई थी, जितनी होनी चाहिए थी। परन्तु वास्तविक धर्म-भावना सर्वथा लुप्त भी नहीं हो गई थी। विहारी के निम्नलिखित दोहा में ढोंगी भक्तों का उपहास है—

जपमाला छापैं तिलक सरै न एकौ कामु।
मन काँचै नाचै वृथा, साँचै राचै रामु॥

११—कवियों की स्वाभिमानी प्रवृत्ति का प्रस्फुटन उनकी रचनाओं में पाया जाता है।

१२—इस युग में मुख्यतया तीन प्रकार की रचनाएँ लिखी गईं—शृंगार सम्बन्धी, भक्त सम्बन्धी और रीति-सम्बन्धी।

१३—सब कवियों ने शृंगार रस को 'रसराज' बताया। उसका प्रचुर निरूपण किया, तथा अन्य रसों की नाम मात्र को चर्चा भर कर दी।

१४—इस युग में नायिका-भेद का प्रचुर कथन हुआ।

१५—नख-शिख-कथन की प्रणाली के ढंग पर स्त्रियों के सौन्दर्य का, उनके अंग-प्रत्यंग का खूब वर्णन किया गया। अलक शतक, तिल हजारा आदि पुस्तकें इस बात की प्रमाण हैं कि एक एक अंग के वर्णन में पूरे पोथे के पोथे रच डाले गये। इनके वर्ण्य विषय हैं। पग, पग-तल, पद-लालिमा, एड़ी, पदांगुलि, पद नख, गुल्फ, पिंडुरी, जंघा, नितम्ब, कटि, नाभि, उदर, त्रिवली, रोम राजि, कुच, कंचुकी, कर, तल, अंगुलि, कर नख, पीठ, ग्रीवा, भुजा, चिबुक, चिबुक का तिल, अधर, देशन, ओठ, वाणी, मुखराग, मुसकान, कपोल, कपोलों की गाढ़, कपोल का तिल, कान, नाक, तथा उनके आभूषण, लोचन, नेत्र, दृगकोर, चितवन, भृकुटि, भाल, मुख-मण्डल केश, अलक, पाटी, माँग, वेणी, अंग वास, अंग-दीप्ति, गति, सर्वांग सुकुमारता और सोलह शृंगार।

नख-शिख-वर्णन की यह प्रणाली अत्यन्त प्राचीन है-वह संस्कृत ग्रन्थों में चली आती थी। हिन्दी के भक्ति-काल में वह मर्यादित बनी थी। रीति-काल में मर्यादा टूट गई और राधा कृष्ण के नाम पर कतिपय कवियों ने कुरुचिपूर्ण वर्णन तक कर डाले।

१६—इस काल में उद्दीपन विभाग के अन्तर्गत ऋतु-वर्णन खूब लिखे गए। इनके दो क्रम चले-षट् ऋतु-वर्णन और बारहमासे। षट् ऋतु के अन्तर्गत होली, हिंडोला, वन, पवन, उपवन, सरोवर, चन्द्र, चन्द्रिका आदि समस्त उद्दीपन उप-करणों के वर्णन किए गए हैं। ये

३—गणिका के निन्दापूर्ण वर्णन लिखे गए। इसका फल यह हुआ कि दरबारों में वेश्याओं का सम्मान होने पर भी समाज में बाजारी हुस्न परस्ती आदर न पा सकी। इन कविताओं में वेश्या-विलास की गंध न आ पाई।

४—नारी-सौन्दर्य की विकृत प्रेम पिपासा इन्हें शान्त न कर सकी और अन्तिम दिनों में सबको निर्वेद परक रचनाएँ लिखनी पड़ी। आश्रयदाता राजे भी इन्हें संतोष न कर सके। रीति-काल के प्रायः सभी कवि किसी न किसी दरबार के आश्रित कवि थे।

५—हिन्दी के रीति-साहित्य के अन्तर्गत आचार्य और कवि का भेद जाता रहा। प्रत्येक कवि आचार्य था तथा प्रत्येक आचार्य कवि। यह एक परिपाटी सी बन गई कि पहिले एक दोहे में अलंकार या रस का लक्षण लिख दिया और फिर उसके नीचे उदाहरण के लिए स्वयं विरचित कवित्त या सवैया लिख दिया गया।

६—दरबार परस्ती के परिणाम स्वरूप कविजन अपने आश्रयदाताओं की प्रशस्ति करने लगे। आश्रयदाताओं का यशोगान उनकी रचनाओं में यथा स्थान देखने को मिलता है। कविजनों ने अपने आश्रयदाताओं को वीर रस परक रचनाओं द्वारा स्फूर्ति प्रदान की और "शिवा कौं बखानौं कि बखानौं छत्रसाल कौं" आदि वाक्यों द्वारा उनकी जी खोलकर प्रशंसा की। इनके द्वारा युद्धवीर, दानवीर, धर्मवीर तथा दयावीर आदि के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत हुए।

७—इस युग में दोहा, कवित्त और सवैया, इन छन्दों के प्रयोग की प्रधानता रही। वैसे रोला, त्रोटक, चौपाई आदि छन्दों का यत्र तत्र प्रयोग पाया जाता है।

८—फारसी और अरबी के शब्दों का खुलकर प्रयोग किया गया।

९—विरह का ऊहात्मक वर्णन पाया जाता है।

१०—चित्र-काव्य-रचना की ओर प्रवृत्ति हुई।

११—कवियों की स्वाभिमानी प्रवृत्ति का प्रस्फुटन उनकी रचनाओं में पाया जाता है।

१२—इस युग में मुख्यतया तीन प्रकार की रचनाएँ लिखी गईं-शृंगार सम्बन्धी, भक्त सम्बन्धी और रीति-सम्बन्धी।

१३—सब कवियों ने शृंगार रस को 'रसराज' बताया। उसका प्रचुर निरूपण किया, तथा अन्य रसों की नाम मात्र को चर्चा भर कर दी।

१४—इस युग में नायिका-भेद का प्रचुर कथन हुआ।

१५—नख-शिख-कथन की प्रणाली के ढंग पर स्त्रियों के सौन्दर्य का, उनके अंग-प्रत्यंग का खूब वर्णन किया गया। अलक शतक, तिल हजारा आदि पुस्तकें इस बात की प्रमाण हैं कि एक एक अंग के वर्णन में पूरे पोथे के पोथे रच डाले गये। इनके वर्ण्य विषय हैं। पग, पग-तल, पद-लालिमा, एड़ी, पदांगुलि, पद नख, गुल्फ, पिंडुरी, जंघा, नितम्ब, कटि, नाभि, उदर, त्रिवली, रोम राजि, कुच, कंचुकी, कर, तल, अंगुलि, कर नख, पीठ, ग्रीवा, भुजा, चिबुक, चिबुक का तिल, अधर, दशन, ओठ, वाणी, मुखराग, मुसकान, कपोल, कपोलों की गाढ़, कपोल का तिल, कान, नाक, तथा उनके आभूषण, लोचन, नेत्र, दृगकोर, चितवन, भृकुटि, भाल, मुख-मण्डल केश, अलक, पाटी, माँग, वेणी, अंग वास, अंग-दीप्ति, गति, सर्वांग सुकुमारता और सोलह शृंगार।

नख-शिख-वर्णन की यह प्रणाली अत्यन्त प्राचीन है-वह संस्कृत ग्रन्थों में चली आती थी। हिन्दी के भक्ति-काल में वह मर्यादित बनी थी। रीति-काल में मर्यादा टूट गई और राधा कृष्ण के नाम पर कतिपय कवियों ने कुरुचिपूर्ण वर्णन तक कर डाले।

१६—इस काल में उद्दीपन विभाग के अन्तर्गत ऋतु-वर्णन खूब लिखे गए। इनके दो क्रम चले-षट् ऋतु-वर्णन और बारहमासे। षट् ऋतु के अन्तर्गत होली, हिंडोला, वन, पवन, उपवन, सरोवर, चन्द्र, चन्द्रिका आदि समस्त उद्दीपन उप-करणों के वर्णन किए गए हैं। ये

वर्णन शृंगार रस के दोनों पक्षों, (सम्भोग और विप्रलम्भ) के अन्तर्गत किए गए हैं। इन वर्णनों में नैसिक सौन्दर्य की अपेक्षा उद्दीपक प्रभाव का ही अधिक कथन किया गया है।

रीति कालीन रचनाएँ प्रायः दो रूपों में लिखी गईं —

(अ) केवल साधारण काव्य के रूप में।

(व) लक्षण ग्रन्थों के रूप में।

कुछ कविगण तो ऐसे थे, जो केवल कवि ही थे। उनकी कविता में यथा स्थान शृंगार के विभिन्न अंगों की चर्चा आ गई है। शृंगार रस के विविध अवयवों, अंग उपांगों आदि के प्रतिपादन के उद्देश्य से उन्होंने कविता नहीं की। इनके अतिरिक्त कवियों का उद्देश्य कविता करने के अतिरिक्त शृंगार रस सम्वन्धी विभिन्न अवयवों का निरूपण करके आचार्यत्व का प्रतिपादन करना था, अर्थात् लक्षण ग्रन्थ उपस्थित करना था। इनकी कविता का ढंग यह था कि पहिले एक दोहा में लक्षण लिख दिया और फिर उसी के नीचे वहीं पर कवित्त या सवैया में तत्सम्बन्धी उदाहरण लिख दिया। केशव, मतिराम, देव, पद्माकर आदि इसी कोटि के कवि थे।

सेनापति प्रथम कोटि के अन्तर्गत आने वाले कवि हैं। उन्होंने यद्यपि रीति-कालीन परिपाटी पर रचना नहीं की तथापि रीतियुग की प्रवृत्तियों की छाप उनकी रचनाओं में प्रचुरता में पाई जाती है। अगले परिच्छेद में यह बात पूर्णतया स्पष्ट की गई है।

४—रीति-कालीन प्रवृत्तियों का प्रभाव

सेनापति की रचना में रीति काल की प्रायः समस्त प्रवृत्तियाँ देखी जाती हैं। इनका विस्तृत विवेचन तो क्रमशः आगामी परिच्छेदों के अन्तर्गत किया जायगा। यहाँ तो केवल इतना ही दिखाना अभीष्ट है कि सेनापति ने यद्यपि रीतिकालीन परिपाटी पर रचना नहीं की है तथापि रीति-युग की प्रवृत्तियों की छाप उनकी रचनाओं में प्रचुरता से पाई जाती है। यथा—

क—राजाश्रय

मुसलमानी दासता और उसकी विरक्ति की चर्चा तो हम कर ही चुके हैं। सेनापति ने अपना 'कवित्तरत्नाकर' किसी राजा को समर्पित किया था और उनसे इस बात की प्रार्थना की थी कि उनकी कविता सुरक्षित रखी जाए—

बानी सौं सहित सुबरन मुँह रहैं जहाँ
धरति बहुत भाँति अरथ समाज कौं।
संख्या करि लीजे अलंकार हैं अधिक यामैं
राखौ मति ऊपर सरस ऐसे साज कौं॥
सुनु महाजन चोरी होति चारि चरन की,
तातैं सेनापति कहै तजि करि ब्याज कौं।
लीजियौ बचाइ ज्यौं चुरावै नाहि कोई सौंपी,
वित्ति की सी थाती मैं कवित्तन की राज कौं॥

(पहिली तरंग १०)

इन्होंने सूर्यवली नामक किसी व्यक्ति की प्रशंसा की है, जो ब्रज प्रदेश का राजा जान पड़ता है—

सूरबली बीर जसुमति कों उज्यारो लाल,
चित्त कों करत चैन बेनहिं सुनाइ कै।
सेनापति सदा सुरमनी कों बसीकरन
पूरन कर्‌यो है काम सब कों सहाइ कै।
नगन सघन घटै गाइन कों सुख करे
ऐसों तैं अचल छत्र धर्‌यो है उचाइ कै॥
नीके निज ब्रज गिरधर जिमि महाराज़
राख्यो है मुसलमान धार तैं बचाइ कै।
(पहिली तरंग ५६)

इतना ही नही, इन्होंने अपने आश्रयदाता राजा को राजा राम के समान बता डाला है—

बानरन राखै तोरि डारत है अरि लंकै
जाके बीर लछन बिराजत निदान है।
अंगद कों राखे बाहु दूरि करे दूपन कों
हरि सभा राजै राज तेज कों निधान है।
आनन्द मगन हग देखि जाहि सियरानी
सेनापति जाके हेम नगर कों दान है।
महाबली बीर बसुदेव कों कुँवर कान्ह
सो तो मेरे जान राजा राम के समान है॥

रचना-कौशल एवं पांडित्य-प्रदर्शन द्वारा कविगण अपने आश्रय दाताओं को प्रसन्न करने का प्रयास किया करते थे। सेनापति के काव्य में भी यह प्रवृत्ति दिखाई देती है। उनका श्लेष-वर्ण (पहिली तरंग) इस बात का सब से बड़ा प्रभाव है।

ख— गर्वोक्ति

अपने पांडित्य-प्रदर्शन के हेतु सेनापति ने यथा-स्थान गर्वोक्ति कही हैं, तथा अपना सिक्का जमाने की प्रवृत्ति का परिचय दिया है। यथा—

तरंग पहिली छन्द संख्या १० के अन्तर्गत "चित्त की सी थ

कवित्तन की राज कौं" वाली चर्चा तो हम कर ही चुके हैं; इनका निम्नलिखित छन्द और देख लीजिए—

मूढन कौं अगम, सुगम एक ताकों जाकी,
तीछन अमल विधि बुद्धि है अथाह की।
कोई है अभंग, कोई पद है सभंग, सोधि
देखे सब अंग, सम सुधा के प्रवाह की।
ज्ञान के निधान, छन्द कोप सावधान, जाकी।
रसिक सुजान सब करत हैं गाह की।।
सेवक सियापति कों, सेनापति कवि सोई
जाकी द्वै अरथ कविताई निरवाह की।
(पहिली तरंग, ६)

सेनापति पंडित राज जगन्नाथ के समकालीन थे। इन्होंने पंडितराज की गर्वोक्ति "कस्तूरिका जनन शक्ति भृता मृगेण किं सेव्यते सुमनसां दिगन्धः" के समान भी एक भारी गर्वोक्ति कही है—

राखत न दोष दोषै पिंगल के लच्छन कौं
बुध कवि के जो उपकंठ ही बसति है।
जोए पद मन कौं हरपि उपजावत है
तजै को कनरसे जो छन्द सरसति है।
अच्छर हैं विशद करति उपै आप सम
जातैं जगत की जड़ताऊ विनसति है।
मानों छवि ताकी उदवत सविता की सेना
पति कवि ताकी कविताई विलसति है।

सेनापति की यह गर्वोक्ति 'घनानन्द' के इस गर्व-कथन से किसी भी प्रकार कम नहीं है कि—'लोग हैं लागि कवित्त बनावत, मोहि तो मेरे कवित बनावत' (सुजान हित प्रबन्ध छन्द सं० २२,)

'कवित्त रत्नाकर' की पाँचवी तरंग के अन्तर्गत कतिपय छन्दों में चित्रालंकार का निर्वाह दिखाया गया है—कुछ छन्द चित्रकाव्य

अथवा कूट पदों के रूप में भी लिखे गए हैं। इनके द्वारा ही पांडित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति झलकती है। (देखे छन्द संख्या ६७, ६८, ६९ तथा ७३ से ८५ तक)

ग—अरबी तथा फारसी के शब्दों का प्रयोग :—

सेनापति की भाषा यद्यपि शुद्ध व्रजभाषा है, तथापि उसमें उर्दू एवं मुगल शासन के प्रभाव के कारण अरबी और फारसी के शब्दों का खुल कर प्रयोग किया गया है। यथा—

'कौल' की है पूरी जाकी दिन दिन बाढ़े छवि।
(१, १५)

'जाके' रोजनामे सेस सहस वदन पढ़ैं।
(१, ६६)

विन जिरह' हथियार विन ताके अब
(२, ३५)

'हाला' में हलाइ मानौं हलाहल प्यायौ है।
(२, ४४)

छिति न 'गरद' मानों रंगे हैं हरद सालि
सोहत 'जरद' को मिलावै हरि पीय कौं।
(३, ३७)

घ—शासकों की शान शौकत का प्रभाव :—

राजमहलों के ठाट-बाट के दृश्य इनकी आँखों में झूमा करते थे। विलासी जीवन जनता के लिए आदर्श की वस्तु थी, तथा अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिए इन कवि गणों को उनके वैभव का चढ़ा चढ़ा कर वर्णन करना पड़ता था। सेनापति के ऋतु वर्णन के अन्तर्गत ये समस्त बातें पाई जाती हैं। यथा—

जेठ नजि करने सुधरत खसर वाने, तल
ताख तहखाने के सुधारि झारियत हैं।

होति हैं मरम्मति विविध जत्न जंत्रन की।
ऊँचे ऊँचे अटा, ते .सुधा सुधारियत हैं॥
सेनापति अतर, गुलाब, अरगजा साजि।
सार तार हार मोल लै लै धारियत हैं॥
ग्रीषम के बासर बराइबे कौं सीरे सब।
राज भोग काज साज यौं सम्हारियतु हैं॥
(३।१०)

ङ—नायक नायिका के लिए कृष्ण और राधा का प्रयोग

शृङ्गार रस परक वर्णन के अन्तर्गत 'सेनापति' ने युग प्रवाह के अनुसार नायक और नायिका के लिए कृष्ण तथा राधिका अथवा उनके पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया है। यथा—

(१) कृष्ण अथवा उनके पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग के लिए देखें—पहिली तरंग छन्द संख्या १२, ६०, ६३, ६५, ६६, ७१ तथा ७७। दूसरी तरंग छन्द संख्या १३, १८, ३०, ३६, ४२, ४३, ४८, ५६, ५६, ६३, ६८, ७१ तथा ७४। तीसरी तरंग छन्द संख्या २५, २८, ३०, ४८, ५६ तथा ६१। (२) राधिका का प्रयोग अपेक्षाकृत कम हुआ है। राधा अथवा उसके पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग के लिए देखें—पहिली तरंग छन्द संख्या ६३, दूसरी तरंग छन्द संख्या ४२, तीसरी तरंग छन्द संख्या ६१।

कुबिजा तथा ऊधौ शब्दों का भी प्रयोग हुआ है—पहिली तरंग छन्द संख्या ६६।

दूसरी तरंग ४२, ६८।

कुबिजा, ऊधौ, ब्रजबाला अधिक शब्दों के प्रयोग के द्वारा यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि सेनापति कृष्ण विषयक भक्ति मिश्रित शृंगार साहित्य से अवश्य ही प्रभावित हुए थे। उदाहरण देखिए—

लोल हैं कलोल पारावार के अपार तऊ।
जमुना लहरि मेरे हिय कौं हरति है॥

सेनापति नीकी परवास हू तैं ब्रज-रज।
पारिजात हू तैं वन-लता सरसति हैं॥
अंग सुकुमारी, संग सोरह-सहस रानी।
तऊ छिन एक पै न राधा बिसरति हैं॥
कंचन अहा पर जराऊ परजंक, तऊ।
कुंजन की सेजैं वे करेजे खरकति हैं॥
(२।४२)

कौने बिरमाए, कित छाए, सजहूँ न आए,
कैसे सुधि पाऊँ प्यारे मदन गुपाल की।
लोचन जुगल तेरे ता दिन सफल ह्वै हैं,
जा दिन बदन-छवि देखौं नन्द-लाल की।
सेनापति जीवन-आधार गिरिधर बिन,
और कौन हरै बलि बिथा मो बिहाल की।
इतनी कहत आँसू बहत फरकि उठी,
लहर लहर दृग बाईं ब्रज-बाल की।
(२।६८)

च—शृंगार रस वर्णन

यद्यपि सेनापति ने रीतिकालीन परिपाटी का अनुसरण नहीं किया है, अर्थात् भाव, विभाव, अनुभाव आदि के लक्षणों तथा उदाहरणों का क्रम से वर्णन नहीं किया है, तथापि उनकी कविता में शृंगार रस के समस्त अवयव पाए जाते हैं। शृंगार रस के आलम्बन विभाव नायक और नायिका हैं। सेनापति ने इनके सौन्दर्य वर्णन में मौलिकता से काम लिया है। यथा—

लाल मन रंजन के मिलिबे कौं मंजन के,
चौकी बैठि बर सुखवति बर नारी है।
अंजन तमोर मनि कंचन सिंगार बिन,
सोहत अकेली देह सोभा कै सिंगारी है।

सेनापति सहज की तन की निकाई ताकी,
देखि कै दृगन जिय उपमा विचारी है।
ताल गीत विन एक रूप के हरति मन,
परवीन गायन की ज्यों अलापचारी है।
(२।५०)

नायिका केवल अपने शरीर के सौन्दर्य मात्र से ऐसी सुशोभित हो रही है जैसे तरल गति आदि से रहित किसी गायक की अलाप सुन्दर जान पड़ती है। दोनों की सुन्दरता कृत्रिम सौन्दर्य से रहित होने में है। उनका सौन्दर्य उन्हीं का है। किसी प्रकार वाह्य उपकरण पर अवलम्बित नहीं रहता है। इन्होंने कुछ नायिकाओं के वर्णन भी लिखे हैं—

लोलन जुगल थोरे थोरे से चपल सोई।
सोभा मन्द पवन चलत जलजात की॥
पीत हैं कपोल तहाँ आई अरुनाई नई।
ताही छबि करि ससि आभा पात पात की॥
सेनापति काम भूप सोवत सो जागत है।
उज्ज्वल विदल द्युति पैये गात गात की॥
सैसव निसा अछौत जोवन दिन उदौत।
वीच वाल वधू धाई पाई परभात की॥

यहीं मुग्धा नायिका का सुन्दर वर्णन किया गया है। 'काम भूप सोवत सो जागत है' कह कर वयः सन्धि को अति उत्तमता के साथ व्यंजित किया गया है। प्रभात के रूपक ने सोने में सुहागे का काम किया है।

नायिका के शारीरिक सौन्दर्य का समष्टि रूप में भी वर्णन हुआ है। सौन्दर्य का व्यष्टि रूप में भी वर्णन किया गया है, अर्थात् नख-शिख निरूपण वाली शैली पर भी नायिका के अंगों के सौन्दर्य सम्वन्धी वर्णन लिखे हैं। यथा—

अंजन सुरंग जीते खंजन, कुरंग, मीन।
नैंक न कलस उपमा कौं नियरात है॥
नीके, अनियारे, अति चपल, ढरारे प्यारे।
ज्यौं ज्यौं मैं निहारे त्यौं त्यौं खरौ ललचात है॥
सेनापति सुधा से कटाछनि बरसि ज्यावैं।
जिनकौं निरखि हियौ हरषि सिरात है॥
कान लौं विसाल, काम भूप के रसाल बाल।
तेरे दृग देखे मेरौ मन न अघात है॥
(२।१)

यहाँ नायिका के नेत्रों का वर्णन किया गया है इसी प्रकार छंद १२ तक नायिका के विभिन्न अङ्गों से सम्वन्धित वर्णन लिखें गए हैं।

संयोग श्रृंगार का वर्णन

सेनापति ने भी स्वकीया एवं एक नारी व्रत की महत्ता को स्वीकार करते हुए अन्य रीतिकालीन कवियों की भाँति संयोग श्रृंगार के वर्णन लिखे हैं।

फूलन सौं बाल की बनाइ गुही बेनी लाल।
भाल दीनी बैंदी मृगमद की असित है॥
अङ्ग अङ्ग भूषन बनाइ ब्रज भूषन जू।
बीरी निज करके खवाई अति हित है॥
ह्वै कै रस बस जब दीबे कौं महाउर के।
सेनापति स्याम गह्यौ चरन ललित है॥
चूमि हाथ नाथ के लगाइ रही आँखिन सौं।
कही प्रानपति यह अति अनुचित है॥
(२।३६)

...... दर्शन, स्पर्श एवं संलापादि में नायक नायिका अ...
... ... हैं। अतः यहाँ दाम...

भाव की व्यंजना कह दी गई है। नायिका श्रृंगार-वर्णन उद्दीपन विभाव है। नायिका 'प्रौढ़ा स्वाधीनंपति' का है। स्वकीया की सुकुमार भावनाओं का सुन्दर चित्रण है। 'वे भी गुहन', 'पान खिलाया', आदि नायिक अनुभाव पति द्वारा श्रृंगार किये जाने पर पत्नी के चित्त में प्रसन्नता उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। 'स्वेद' तथा 'रोमांचि' सात्त्विक अनुभाव व्यंजित हैं। महावर लगाने का प्रयास करते ही पत्नी पति के हाथ को थाम कर आँखों से लगा लेती है। यह नायिका के अयतज अलंकार 'औदार्य को बताता है। 'विलास' लख व्यंजित है। नायिका के 'ब्रज भूषन जू' तथा 'स्यामा जू' का प्रयोग स्पष्ट ही रीतिकालीन परम्परा का द्योतक है।

विप्रलम्भ श्रृंगार का वर्णन

जौतैं प्रानप्यारे परदेस कौं पधारे तौतैं,
विरह तैं भई ऐसी ता तिय की गति है।
करि कर ऊपर कपोलहिं कमलनैंनी,
सेनापति अनमनी वैठियै रहति है।
कागहिं उड़ावै, कोहू-कौहू करै सगुनौती।
कौहू वैठि अवधि के वासर गनति है॥
पढ़ि पढ़ि पाती, कौहू फेरि कै पढ़ति, कौहू।
प्रीतम कौं चित्र मैं सरूप निरखति है॥

(२।६१)

यहाँ विरह-जनित 'उद्विग्नता' का वर्णन है! नायिका के कायिक अनुभाव, 'करि कर ऊपर कपोलहि,' 'कागहि उड़ावै', 'करै सगुनौनी,' स्पष्ट हैं। 'अनमनी वैठयै' से 'विषाद' मानसिक अनुभाव हुआ। 'पाती' तथा 'चित्र' उद्दीपन विभाव हैं। 'चिन्ता', स्मृति तथा 'हर्ष' संचारी भाव स्पष्ट हैं?

(छ) अन्य रीतिकालीन कवियों की भाँति सेनापति का ऐहिक शृंगार जब जीवन की एक क्षणिक घटना के रूप में अट्टहास करने लगा तब उन्हें परमार्थ की चिन्ता हुई। फलस्वरूप उन्होंने भी 'रामायण-वर्णन' और 'राम-रसायन', ये दो तरंगे लिखीं। संसार की निस्सारता से ऊब कर वे अन्त में आत्म-चिन्तन की ओर अग्रसर हुए। सेनापति ने स्पष्ट ही कहा है कि जीवन लोहे के ताव की तरह शीघ्र ही समाप्त होने जाने वाली वस्तु है। यथा—

कीनौं बालापन बालकेलि मैं मगन मन,
लीनौ तरुनापै तरुनी के रस तीर कौं।
अब तू जरा में पर्‌यौ मोह पींजरा मैं सेना,
पति भजु रामैं जो हरैया दुख पीर कौं॥
चिंतहि चिताऊ भूलि काहू न सताउ, आउ
लोहे कैसौ ताव, न बचाऊ है सरीर कौं।
लेह देह करि कै, पुनीत करि लेह देह,
जीभैं अब लेह देह सुरसरि नीर कौं।
(५।१२)

५—रस-परिपाक

'सेनापति' ने शृंगार, वीर, रौद्र, भयानक तथा शान्त, इन पाँच रसों से सम्बन्धित रचनाएँ लिखी हैं। रीतिकालीन कवियों की भाँति इन्होंने भी प्रधानता शृंगार रस को ही दी है। एक दो स्थलों पर 'हास्य' रस सम्बन्धी छन्द भी लिखे हैं।

क—संभोग शृंगार रस का वर्णनः—

(१) देखि चरनारविंद वंदन करयौ बनाइ,
उर कौं बिलोकि, विधि कीनी आलिंगन की।
चैन के परम ऐन, राखे करि नैंन नैंक,
निरखि निकाई इन्दु सुन्दर वदन की॥
मान एक पत्नी के व्रत की, पतिव्रत की,
सेनापति सीमा तन मन अरपन की।
सिय रघुराई जू कौं माल पहिराई, लौन,
राई करि वारी सुन्दराई त्रिभुवन की॥
(४।१८)

(२) आनन्द मगन चंद महा मनि-मन्दिर मैं,
रमैं सियराम सुख, सीमा हैं सिंगार की।
पूरन सरद-ससि सोभा सौं परस पाई,
बाढ़ी है सहस गुनी दीपति अगार की॥
भौन के गरभ, छवि छीर की छिटकि रही,
विविध रतन ज्योति अंबर अपार की।
दोऊ बिहसत विलसत सुख सेनापति,
सुरति करत छीर-सागर विहार की॥
(४।२१)

राम और सीता आलम्बन विभाव हैं। माठी, मन्दिर, रत्न-ज्योति, पूर्णचन्द्र, शीतल चाँदनी और स्वच्छ आकाश उद्दीपन विभाव हैं। 'विहँसना' तथा 'विलसना' कायिक अनुभाव हैं। 'रोमाँच' तथा 'स्वेद' सात्त्विक अभाव व्यंजित हैं। 'हर्ष' तथा 'स्मृति' संचारी भाव हैं। सुख पूर्वक 'विलसत' में उत्तमरति की व्यंजना है। अतः रति स्थायी भाव पुष्ट होकर संयोग शृङ्गार हुआ।

(३) सीता अरु राम, जुवा खेलत जनक धाम,
सेनापति देखि नैंन नैंकहू न मटके।
रूप देखि देखि रानी, वारि फेरि पियैं पानी,
प्रीति सौं वलाइ लेत कैथौ कर चटके॥
पहुंची के हीरन मैं दंपति की झाँई परी,
चंद विधि मानौं मध्य मुकुर निकट के।
भूलि गयौ खेल, दोऊ देखत परसपर,
दुहुन के दृग प्रति विंबनसौं अटके॥
(४।२०)

उपर्युक्त वर्णन में औचित्य एवं मर्यादा की पूरी तरह रक्षा करते हुए प्रेम का उत्कर्ष प्रदर्शित किया गया है।

राम और सीता आलम्बन विभाव हैं। 'रानियों द्वारा वलैयां लिया जाना' तथा 'राई-नौन उसारना' उद्दीपन विभाव है। 'प्रीति' और 'दम्पति' द्वारा रति स्थायी भाव की व्यंजना है। पहुंची के हीरों में पड़ती हुई एक दूसरे की परछांई को देखना 'कायिक' अनुभाव है। 'भूलि गयौ खेल' द्वारा स्पष्ट है कि उनकी शारीरिक चेष्टाएँ रुक- गई हैं। अतः 'स्तम्भ' सात्त्विक अनुभाव हुआ। 'रोमांच' सात्त्विक अनुभाव की व्यंजना है।

इष्ट की प्राप्ति तथा होने वाले उत्सव के कारण दोनों का चित्र प्रसन्न है और दोनों संज्ञाहीनता की साधारण अवस्था को प्राप्त हैं। अतः 'हर्ष' और 'मोह' संचारी हुए।

"दुहुन के दृग प्रतिबिम्बन सों अटके" से यह स्पष्ट है कि

५—रस-परिपाक

'सेनापति' ने शृंगार, वीर, रौद्र, भयानक तथा शान्त, इन पाँच रसों से सम्बन्धित रचनाएँ लिखी हैं। रीतिकालीन कवियों की भाँति इन्होंने भी प्रधानता शृंगार रस को ही दी है। एक दो स्थलों पर 'हास्य' रस सम्बन्धी छन्द भी लिखे हैं।

क—संभोग शृंगार रस का वर्णनः—

(१) देखि चरनारविंद वंदन करयौ वनाइ,
उर कौं विलोकि, विधि कीनी आलिंगन की।
चैन के परम ऐन, राखे करि नैंन नैंक,
निरखि निकाई इन्दु सुन्दर वदन की॥
मान एक पत्नी के व्रत की, पतिव्रत की,
सेनापति सीमा तन मन अरपन की।
सिय रघुराई जू कौं माल पहिराई, लौन,
राई करि वारी सुन्दराई त्रिभुवन की॥
(४।१८)

(२) आनन्द मगन चंद महा मनि-मन्दिर मैं,
रमैं सियराम सुख, सीमा हैं सिंगार की।
पूरन सरद-ससि सोभा सौं परस पाई,
वाढ़ी है सहस गुनी दीपति अगार की॥
भौन के गरभ, छवि छीर की छिटकि रही,
विविध रतन ज्योति अंवर अपार की।
दोऊ विहसत विलसत सुख सेनापति,
सुरति करत छीर-सागर विहार की॥
(४।२१)

राम और सीता आलम्बन विभाव हैं। माठी, मन्दिर, रत्न-ज्योति, पूर्णचन्द्र, शीतल चाँदनी और स्वच्छ आकाश उद्दीपन विभाव हैं। 'विहँसना' तथा 'विलसना' कायिक अनुभाव हैं। 'रोमाँच' तथा 'स्वेद' सात्त्विक अभाव व्यंजित हैं। 'हर्ष' तथा 'स्मृति' संचारी भाव हैं। सुख पूर्वक 'विलसत' में उत्तमरति की व्यंजना है। अतः रति स्थायी भाव पुष्ट होकर संयोग शृङ्गार हुआ।

(३) सीता अरु राम, जुवा खेलत जनक धाम,
सेनापति देखि नैंन नैंकहू न मटके ।
रूप देखि देखि रानी, वारि फेरि पियैं पानी,
प्रीति सौं बलाइ लेत कैधौं कर चटके ॥
पहुंची के हीरन मैं दंपति की झाँई परी,
चंद विधि मानौं मध्य मुकुर निकट के ।
भूलि गयौ खेल, दोऊ देखत परसपर,
दुहुन के दृग प्रति विंबनसौं अटके ॥
(४।२०)

उपर्युक्त वर्णन में औचित्य एवं मर्यादा की पूरी तरह रक्षा करते हुए प्रेम का उत्कर्ष प्रदर्शित किया गया है।

राम और सीता आलम्बन विभाव हैं। 'रानियों द्वारा बलैयां लिया जाना' तथा 'राई-नौन उसारना' उद्दीपन विभाव है। 'प्रीति' और 'दम्पति' द्वारा रति स्थायी भाव की व्यंजना है। पहुंची के हीरों में पड़ती हुई एक दूसरे की परछांई को देखना 'कायिक' अनुभाव है। 'भूलि गयौ खेल' द्वारा स्पष्ट है कि उनकी शारीरिक चेष्टाएँ रुक गई हैं। अतः 'स्तम्भ' सात्त्विक अनुभाव हुआ। 'रोमांच' सात्त्विक अनुभाव की व्यंजना है।

इष्ट की प्राप्ति तथा होने वाले उत्सव के कारण दोनों का चित्र प्रसन्न है और दोनों संज्ञाहीनता की साधारण अवस्था को प्राप्त हैं। अतः 'हर्ष' और 'मोह' संचारी हुए।

"दुहुन के दृग प्रतिविम्बन सों अटके" से यह स्पष्ट है कि

नायक-नायिका परस्पर दर्शन द्वारा एक दूसरे में पूर्णतया अनुरक्त हैं। अतः सम्भोग शृंगार पूर्णतया पुष्ट हुआ।

(४) संभोग शृंगार वर्णन सम्बन्धी एक और उदाहरण देख लीजिए—

सरस सुधारी राज मन्दिर में फुलवारी,
मोर करैं सोर, गान कौकिल विराव के।
सेनापति सुखद समीर है, सुगन्ध मंद,
हरत सुरत-स्रम-सीकर सुभाव के॥
प्यारौ अनुकूल, कौहू करत-करन-फूल,
कोहू सीस फूल, पाँवड़ेऊ मृदु पाँव के।
चैत मैं प्रभात, साथ प्यारी अलसात लाल,
जात मुसकात फूल वीनत गुलाव के॥

संभोग-शृंगार रस के समस्त अवयव स्पष्ट हैं। 'प्यारौ अनुकूल' तथा सुरत-स्रम द्वारा रति स्थायी भाव स्पष्ट ही है तथा दम्पति का पास रहकर एक दूसरे के प्रति अनुकूल होना भी स्पष्ट है। सरस सुधारी राजमन्दिर की फुलवारी, मोरों को शोर, कौकिल का गान, सुगंध, मंद, सुखद समीर तथा चैत्र कालीन प्रभात का समय अधिक उद्दीपन विभाव है। 'अलसात' से 'जृंभा' सात्त्विक अनुभाव तथा 'सीकर' द्वारा 'स्वेद' सात्त्विक अनुभाव व्यंजित हैं। यदि 'जृंभा' को सात्त्विक अनुभावों में न माना जाए, तो 'अलसात' कायिक अनुभाव हुआ। इनके शृंगार-वर्णन में कहीं कहीं मर्यादा का अतिक्रमण हो गया है, और ऐसे स्थलों पर इन वर्णनों में 'अश्लीलत्व' दोष आ गया है। देखिये।

(५) जरद, बदन, पान खाए से रदन, मानौं।
कुन्द सरद-चंद द्युति दिखावति है॥
चीकने चिकुर दूरि रहे हैं विसाल भाल।
बांधी कसि पट्टी सेनापति रिझावति है॥

कीने नत नैंन, देखै मुख-चंद नन्दन कौं।
अंक लै मयंक मुखी ताहि मल्हावति है॥
बाएँ कर हौरिल कौं सीस राखि दाहिने सौं।
गहे कुच प्यारी पयपान करावति है॥
(२।६५)

(६) सूरै तजि भाजी, वात कातिक मौं जव सुनी।
हित की हिमाचल तैं चमू उतरति है॥
आए आगहन, कीने गहन दहन हूँ कौं।
तित हू तैं चली, कहूँ धीर न धरति है॥
हिय मैं परी है हूल दौरि गहि तजी तूल।
अव निज मूल सेनापति सुमिरति है॥
पूस में त्रिया के ऊँचे कुच-कनकाचल मैं।
गढ़वै गरम भई, सीत सौं लरति है॥
(३।४४)

यहाँ एक वात वता देना आवश्यक है। दूसरी तथा तीसरी तरंगों के अन्तर्गत किए गए शृंगार वर्णनों में अश्लीलत्व दो की झलक मात्र आई है। पहिली तरंग में अश्लीलता अधिक है। वहाँ श्लेष-वर्णन के मोह के कारण सेनापति को रसाभास पूर्ण एवं अश्लील वातों के कहने में भी संकोच नहीं हुआ है। यथा—

(७) छतियाँ सकुच वाकी को कहै समान तातैं,
न रन तैं मुरै सदा वीर है करन में।
सवै भाँति पन करि वलमहिं पाग राखै,
तेज की सुनै तैं आप मानै मान खन मैं।
अवला लै अंक भरै रति जो निदान करै,
ससि सव सोभावंत मानियै जोधन मैं।
जुगति विचारी सेनापति है वरनि कहे,
वर नर नारि दोऊ एक ही वचन मैं।
(१।६४)

ख—विप्रलम्भ श्रृंगार रस का वर्णनः—

सेनापति का ध्यान संयोग श्रृंगार की अपेक्षा वियोग की ओर अधिक है। इनके विरह वर्णनों के अन्तर्गत प्रथ प्रवास हेतुक तथा विरह-हेतुक विरह है और विरह व्यथ उद्दीप्त करने के लिए ऋतु-वर्णन की सहायता ली गई है। यथा

(१) दूरि जदुराई सेनापति सुखदाई देखौ,
ऋतु पाउस की आई, न पाई प्रेम-पतियाँ।
धीर जलधर की सुनत धुनि धरकी हैं,
दरकी सुहागिल की छोह भरी छतियाँ।
आई सुधि बर की हिए में आनि खरकी,
तू मेरी प्रानप्यारी यह प्रीतम की बतियाँ।
बीती औधि आवन की लाल मनभावन की,
डग भई बामन की सावन की रतियाँ।
(३।२८)

यही प्रवास हेतुक विप्रलम्भ श्रृंगार का वर्णन है। विरहिणी नायिका आलम्बन विभाव है। पावस की ऋतु, सावन का महीना और अँधेरी रात में वर्षा की झड़ी, किसे अपने प्रीतम की याद न दिलाएँगे? ये सब उद्दीपन विभाव हुए। प्यारे की सुधि तक न मिलना और उसके आने की अवधि तक बीत जाना तरह तरह के वितर्क (संचारी भाव) उत्पन्न करते हैं। 'वितर्क' तथा 'शंका' संचारी भाव स्पष्ट हैं। छाती में धड़कन होना मानसिक अनुभाव है। प्रीतम की बात को 'तू मेरी प्राण प्यारी कह कर बुलाना आदि बातों की याद आने की चर्चा द्वारा 'स्मृति' एवं 'गर्व' संचारी भावों की व्यंजना है। 'डग भई बामन की सावन की रतियाँ' यह बताता है कि वह उत्सुकता पूर्वक बाट जोह रही है और उसे नींद नहीं आ रही है। यहाँ 'उत्सुकता' विषाद और उद्वेग संचारी भाव हुए। उत्कट अनुराग होने पर भी प्रिय संयोग न

अभाव है। अतः 'विप्रलम्भ शृंगार रस' के अन्तर्गत रति स्थायी भाव पूर्णतया परिपुष्ट है।

(२) लाल के वियोग र , गुलाल हू तैं लाल, सोई,
अरुन वसन ओढ़ि जोग अभिलाख्यौ है।
सैन सुख तज्यौ, सज्यौ रैन-दिन जागरन,
भूलि हू न काहू और रूप-रस चाख्यौ है।
प्यारी के नयन असुवान वरसत, तासौं,
भीजत उरोज देखि भाउ मन भाख्यौ है।
सेनापति मानौं प्रानपति के दरस रस,
शिव कौं जुगल जलसाई करि राख्यौ है।
(२।२३)

नायिका स्वकीया है। पति के परदेश चले जाने के कारण विरह व्यथिता है। उसने केश-प्रसाधवादि कार्य छोड़ दिए हैं। अतः प्रोषित पति का है। भूल हू न कासू और रूप रस चाख्यौ है' के द्वारा इस वात का प्रमाण मिलता है कि वह पूर्णतया पतिव्रता है। उत्तम रति है। योगियों जैसे वस्त्र धारण कर लेना सेज पर सोना छोड़ देना, वे 'निर्वेद' संचारी भाव के व्यंजक हैं। अश्रु प्रवाह अनुभाव है। शंका, चिन्ता, स्मृति, प्रलाप, औत्सुक्य तथा विषाद संचारी भावों की व्यंजना है।

(३) लोल हैं कलोल पारावार के अपार. तऊ,
जमुना लहरि मेरे हिय कौं हरति हैं।
सेनापति नीकी पटवास हू तैं व्रज-रज,
पारिजात हू तैं वन-लता सरसति हैं।
अंग सुकुमारी, संग सोरह-सहस रानी,
तऊ छिन एक पै न राधा विसरति है।
कंचन अहा पर जराऊ परजंक, तऊ,
कुंजन की सेजैं वे करेजे खरकति हैं।
(२।४२)

तरह तरह की विलास की सामग्रियाँ, रनवास की सुकुमारियाँ स्वर्ण जटित पलंग आदि उद्दीपन विभाव हैं। गुण कथन अनुभाव हैं। यमुना की लहरें, वन-लता तथा व्रज की कुंजों की याद आना 'स्मृति' एवं कोह संचारी भाव हैं 'निर्वेद' संचारी भाव की व्यंजना है।

कहीं कहीं ईर्ष्या हेतुक विप्रलम्भ शृंगार रस का भी वर्णन पाया जाता है—

(४) कुबिजा उर लगाई हमहूँ उर लगाई ?
पी रहे दुहू के तन मन वारि दीने हैं।
वे तौ एक रति जोग हम एक रति जोग,
सूल करि उनके हमारे सूल कीने हैं।
कूबरी यौं कल पैहै हम इहाँ कल पैहैं,
सेनापति स्यामै समुझै यौं परवीने हैं।
हम वे समान ऊधौ कहौ,कौन कारन तैं,
उन सुख माने हम दुख मानि लीने हैं।
(१।६६)

(५) भौन सुधराए सुख साधन धराए, चारयौं,
जाम यौं वराए सखी आज रति राति है।
आयौ चढ़ि चंद, पै न आयौ वसुदेव-नंद,
छाती न थिराति आधी राति नियराति है।
सेनापति प्रीतम की प्रीति की प्रतीति मोहिं,
पूछति हौं तोहि मोसी और को सुहाति है।
छिन विरमाए, केलि-कला कै रमाए, लाल,
अजहूँ न आए धरि कैसे धरि जात है।
(२।५१)

सेनापति ने विरही की विकलता के अत्युक्ति पूर्णवर्णन लिखते हुए ऊहात्मक वर्णन वाली परिपाटी का ही सुन्दर निर्वाह किया है—

ज्यौं ज्यौं सखी सीतल करति उपचार सब,
त्यौं त्यौं तन विरह की विथा सरसाति है।
ध्यान कौं धरत सगुनौतिया करत, तेरे,
गुन सुमिरत ही विहाति दिन-राति है।
सेनापति जदुवीर मिलैं ही मिटैगी पीर,
जानत हौं प्यास कैसे ओसनि बुझाति है।
मिलिवे के समैं आप पाती पठवत, कछु,
छाती की तपति पति पानी तैं सिराति है।
(२।३६)

उन दिनों विरहिणियों की विकलता का अतिरंजित वर्णन करने को एक परम्परा सी बन गई थी और उसके अनुसार विरहिणियों के शरीर पर कपूर, चन्दन अधिक शीतल पदार्थों के लेप आदि द्वारा विरह-ताप को कम करने वाले उपचारों का वर्णन करना भी आवश्यक सा हो गया था। सेनापति ने भी एक स्थल पर इस प्रकार के विरहोपचारों का वर्णन किया है—

चले उत पति के वियोग उतपति भई,
छाती है तपति ध्यान प्रान के अधार कौं।
सेनापति स्याम जू के विरह विहाल बाल,
सखी सब करति विचार उपचार कौं॥
प्रीतम अरग जातैं, ताही तैं अरगजा तै,
सीरक न होति, जुर जारत है मार कौं।
सीतल गुलाब हू सौं घिसि उर पर कीनौं,
लेप घनसार कौं सो मानौं घन सार कौं॥
(२।४३)

ग—वीर रस का वर्णनः—

सेनापति ने वीरोचित उत्साह के प्रदर्शन द्वारा वीर रस का निरूपण किया है। राम का सेना एकत्रित करना, हनूमान को

सीता की खोज में भेजना, सेतु बाँधने का आयोजन करना, जैसे विषयों की ओर इन्होंने अधिक ध्यान दिया है। उदाहरण देखिए-

) इत वेद-बंदी वीर बानी सौं बिरद बोलैं,
उत सिद्ध-विद्याधर गाइ रिझावत हैं।
इत सुर-राज, उत ठाढ़े हैं असुर-राज,
सीस दिगपाल, भुवपाल नवावत हैं॥
सेनापति इत महाबली साखामृग-राज,
सिंधु राज बीच गिर-राज गिरावत हैं।
तहाँ महाराजा राम, हाथ लेधनुप बान,
सागर के बाँधिबे कौं ब्यौंत बतावत हैं॥

(४।४६)

यह कर्मवीर राम का स्वरूप है। रावण के उत्कर्ष की चर्चा द्वारा वर्णन अधिक सजीव हो गया है। और बात भी ठीक है। विपक्षी अथवा शत्रु जितना ही सबल होगा, उत्साह का संचार उतना ही तीव्र होगा।

प्रबल उत्साह का एक और उदाहरण देख लीजिये—

२) कीजिये रजाइस कौं हरि पुर जाइ सकौं,
पौनों वीर जाइ सकौं जा तब खरो सो है।
काहू कौं न डर, सेनापति हौं निडर सदा,
जाके सिर ऊपर जु साईं राम तोसो है॥
कुलिस कठोरन कौं देखौं नख-कोरन कौं,
लाग़ नैक पोरन कौं मेरु चून कैसो है।
चूर करौं सोरन कौं, कोटि कोट तोरन कौं,
लंका गढ़ फोरन कौं, को रन कौं मोसों है॥

(४।५२)

रावण के बड़प्पन की चर्चा करके राम-रावण के युद्ध का वर्णन किया है, जो सर्वथा सजीव एवं प्रभावोत्पादक है—

पजरत पाउक न चलत पवन कहूँ,
नैक न रहत लागि तेज ससि सूर सौं।
भूलि जात गरज, सकल सात सागरन,
लीन ह्वै तरंग मीन रहैं पयपूर सौं॥
अमर समर तजि, भाजैं भयभीत मन,
सेनापति कौंन समुहात ऐसे सूर सौं।
महाबली धराधर राज कौं धरन हार,
जब चढ़ै कोपि दसकन्धर गरूर सौं॥
(४।५७)

वीर रस मद माते, रन तैं न होत हाँते,
दुहू के निदान अभिमान चाप बान कौं।
सर बरषत, गुन कौं न करषत मानौं,
हिय हरषत जुद्ध करत बखान कौं॥
सेनापति सिंह सारदूल से लरत दोऊ,
देखि धधकत दल देव जातुधान कौं।
इत राजा राम रघुबंस कौं धुरंधर है,
उत दसकन्धर है सागर गुमान कौं॥
(४।५८)

वीरोचित मुद्राओं के सजीव चित्र खींच कर भी सेनापति ने वीर रस परक सुन्दर वर्णन लिखे हैं। पैर रोपते हुए अंगद का स्वरूप देखिये—

धर्यौ है चरन दससीस हू के सीस पर,
ईस की असीस कौं गरब सब लोपि कै।
सेनापति महाराजा राम की दुहाई मोंहि,
तोरौं गढ़ लंक, चकचूर करौं कोपि कै॥
आइ कै उठावौ बाहु-बल को गुमान जाहि,
दीपति बढ़ावौ सुभटाई की सु ओपि कै।

क 'दानवीर' राम का वर्णन भी देख लीजिए—

रावन कौ वीर, सेनापति रघुवीर जू की,
आयौ है सरन, छाँड़ि ताहि मद-अंध कौं।
मिलत ही ताकौं राम कोप कै करी है ओप,
नामन कौं दुज्जन, दलन दीन-बन्धु कौं॥
देखौ दान-वीरता, निदान एक दान ही मैं,
कीने दोऊ दान, को बखानैं सत्यसंध कौं।
लंका दसकन्धर की दीनी है बिभीषन कौं,
संकाऊ बिभीषन की दीनी दसकन्ध कौं॥
(४।४०)

सेनापति के वीर रस वर्णन के सम्बन्ध में दो बातें विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं। (१) सेनापति के कवित्त ओजगुण पूर्ण हैं, परन्तु शब्दों को दुरूह बनाने का प्रयास नहीं किया गया है। शब्दों के कर्णकटु रूपों को बचाया गया है। और (२) इनके द्वारा वर्णित उत्साह में मर्यादा का सदैव ध्यान रखा गया है। यथा—

वज्र हू दलत, महा कालै संहरत जारि,
भसम करत भलै काल के अनल कौं।
झंझा पवमान अभिमान कौं हरत बाँधि,
थल कौं करत जल, थल करै जल कौं॥
पब्वै मेरु-मंदर कौं फोरि चकचूर करैं,
कीरति कितीक, हनैं दानव के दल कौं।
सेनापति ऐसे राम-बान तऊ विप्र हेत,
देखत जनेऊ खैंचि राखैं निज बल कौं॥
(४।२८)

द्र रस का वर्णन:—

भीज्यौ है रुधिर-भार, भीम घनघोर धार,
जाकौं सत कोटि हू तैं कठिन कुठार है।
छत्रियन मारि कै निछत्रिय करी है छिति,
बार इकईस, तेज पुंज कौं अधार है॥
सेनापति कहत कहाँ है रघुवीर कहौ ?
छोह भर्यौ लोह करिबे कौं निरधार है।
परत पगनि, दसरथ कौं न गनि, आयौ,
अगनि-सरूप जमदगनि-कुमार हैं॥
(४।२९)

भयानक रस का वर्णन:—

भयानक रस का दो तीन स्थलों पर चित्रण हुआ है—

(१) धनुष-भंग के अवसर पर—

हहरि गयौ हरि हिये, धधकि धीरत्तन मुक्किय।
छत्र नरिंद थरहर्यौ, मेरु धरनी धसि धुक्किय॥
अक्खि पिक्खि नहिं सकइ, सेस नक्खिन लग्गिय तल।
सेनापति जय सद्द, सिद्ध उच्चरत बद्धि बल।

उद्दंड चंड भुजदंड भंजि, धनुष राम जगपति प्रबल ॥
टुट्टिय पिनाक निर्घात सुनि खुट्टिय दिग्गंग दिग्गज विकल ।

(४।६६)

यह वर्णन वीर-गाथा-काल की छप्पय वाली शैली पर कि
गया है तथा शब्दों के द्वित्व रूप रखने का आग्रह स्पष्ट है ।

(२) लंका-दहन के अवसर पर—

रह्यौ तेल पी ज्यों थियहू कौं पूछ भींज्यौ, ऐसी,
लपट्यौ समूह वह कोटिक पटन कौं ।
वेग सौं भ्रमत नभ देखियै चपल पूँछ,
देखियै न राति जैसी गहन महल कौं ।
सेनापति वरनि बखानै मानौं धूम-केतु,
उदयौ बिनासी दसकंधर के दल कौं ।
सीता को संताप, कि खलीता उतपात कौं, कि
काल कौं पलीता प्रलै काल के अनल कौं ॥

(४।३८)

यह वर्णन गोस्वामी तुलसीदास की कवितावली में किए गए
वर्णन से मिलता है ।

च—अद्भुत रस-वर्णन:—

चौथी तरंग 'रामायण-वर्णन' के अन्तर्गत दो-तीन स्थलों पर, विशेषकर युद्ध- वर्णन में 'अद्भुत रस' परक वर्णन पाए जाते हैं ! यथा—

(१) चल्यौ हनूमान राम-बान के समान, जानि,
सीता सोध-काज दसकंधर नगर कौं ।
राम कौं जुहारि, बाहु-बल कौं सँभारि करि,
सबही के संसै निरवारि डारि उर कौं ।
लागी है न बार, फाँदि गयौ पारावार पार,
सेनापति कविता बखानैं वेग-बर कौं ।

खोलत पलक जैसे एक ही पलक बीच,
दृगन कौं तारौ दौरि मिलै दिनकर कौं।
(४।३२)

५(२) राम के अद्भुत प्रभाव का भी सुन्दर वर्णन देख लीजिए-

सकल सुरेस, देस देस के नरेस, आइ,
आसनन बैठे जे महा गरूर धरि कै।
जोबन के मद, कुल मद, भुज-बल मद,
संपति के मद सौं रहे निदान भरि कै।
सेनापति कहै राम रूप धरपित भूप,
ह्वै रहे चकित, पै न रहे धीर धरि कै।
भूल्यौ अभिमान, देखे भानु-कुल-भानु, सब
ठाढ़े सिंहासन तैं ह्वै रहे उतरि कै।
(४।१२)

छ—हास्य रस वर्णन:—

शिष्ट परिहास एवं स्मित हास का यह उदाहरण बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है—

मा जू महारानी कौं बुलावौ महाराज जू कौं,
लीजै मत कैकयी सुमित्रा हू के जिय कौं।
रातिन कौं बीच सात रिपिन के बिलसत,
सुनौ उपदेस ता अरुंधती के पिय कौं।
सेनापति विस्व में बखाने विस्वामित्र-नाम,
गुरु बोलिये पूछियै, प्रबोध करैं हिय कौं।
खोलियै निसंक यह धनुष न संकर कौं,
कुँवर मयंक-मुख ! कंकन है सिय कौं।
(४।१६)

ज—शान्त रस वर्णन—

शान्त रस का स्थायी भाव 'निर्वेद' है। जब सांसारिक सुखों की नश्वरता के फलस्वरूप संसार से विरक्ति हो जाए, तब निर्वेद

अथवा शम स्थायी भाव उत्पन्न हुआ समझना चाहिए। सेनापति ने जीवन को लोहे के ताव के समान क्षणिक एवं नश्वर बताकर 'निर्वेद' स्थायी भाव की सुन्दर व्यंजना की है—

कीनौ बालापन बालकेलि मैं मगन मन,
लीनौ तरुनापै तरुनी के रस तीर कौं।
अब तू जरा मैं पर्यौ मोह पींजरा मैं, सेना—
पति भजु राम जो हरैया दुख पीर कौं।
चितहिं चिताउ, भूलि काहू न सताउ, आउ
लोहे कैसो ताउ, न बचाउ है सरीर कौं।
लेहु देह करि कै पुनीत करि लेहु देह,
जीभै अवलेहु देह सुरसरि नीर कौं।
(४।२८)

सांसारिक सुखों से विरक्ति के अतिरिक्त भविष्य में जीवन को सार्थक बनाने का प्रण भी है। जीवन क्षणिक है। लोहे के ताव के समान शीघ्र ही समाप्त हो जाने वाला है। बाल्यावस्था खेल कूद में व्यतीत होगई, युवावस्था भोग-विलास में नष्ट होगई। अब वृद्धावस्था में ही कुछ कर लेना चाहिए। बुद्धिमानी इसी में है कि अब अपने जीवन के शेष समय को परमार्थ साधन में लगाया जाए।

क—सन्चारी भावों का वर्णन:—

लक्षण एवं उदाहरण वाली शैली पर रचना न करने के कारण सेनापति ने संचारी भावों का स्वतन्त्र रूप में वर्णन तो नहीं किया है, परन्तु उनकी रचना में यथा स्थान उनकी मार्मिक एवं सजीव व्यंजना हो गई है, क्योंकि उनका समावेश अत्यन्त सरल एवं स्वाभाविक रूप में हुआ है। उदाहरण देखिए—

कौनैं बिरमाए, कित छाए, अजहूँ न आए,
कैसे सुधि पाऊँ प्यारे मदन गुपाल की।

लोचन जुगल मेरे ता दिन सफल ह्वै हैं,
जा दिन बदन-छबि देखौं नंद-लाल का।
सेनापति जीवन अधार गिरिधर बिन,
और कौन हरै बलि बिथा मो बिहाल की।
इतनी कहत, आंसू बहत, फरकि उठी,
लहर लहर दृग बाँई ब्रज बाल की।
(२।६८)

यहाँ 'वितर्क से पुष्ट 'विषाद' की शान्ति कराकर 'हर्ष' संचारी भाव की सफल व्यञ्जना की गई है।

ञ--अनुभावों का वर्णन:—

लक्षण उदाहरण वाली शैली पर वर्णन न होते हुए भी इनकी रचना में यथास्थान अनुभावों की सुन्दर एवं सजीव व्यंजना पाई जाती है। यथा—

तोर्‌यो है पिनाक, नाक-पाल बरसत फूल,
सेनापति कीरति बखानै रामचन्द की।
लै कै जयमाल सिय बाल है बिलोकी छबि,
दसरथ लाल के बदन-अरबिन्द की।
परी पेम-फंद उर बाढ़्यौ है अनंद अति,
आछी मंद-मंद चाल चलति गयंद की।
बरन कनक बनी, बानक बनक आई,
झनक मनक बेटी जनक नरिंद की।
(४।१७)

इसे ध्वन्यात्मक काव्य कहें अथवा अनुभावों का बोलता हुआ स्वरूप ? 'स्वेद', 'रोमञ्च', तथा 'स्तम्भ' सात्त्विक अनुभाव हैं। 'मन्द मन्द आछी चाल' कायिक अनुभाव है। प्रेम-फंद में पड़ जाना हृदय के हर्षातिरेक वाले मानसिक अनुभाव की सूचना देता है।

ट—उद्दीपन-विभाग का वर्णनः—

उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत सेनापति ने 'ऋतु-वर्णन' (तीसरी तरंग) लिखा है और शृंगार वर्णन (दूसरी तरंग) के अन्तर्गत यथास्थान नायिका के अंग-उपांगों के सौन्दर्य का निरूपण किया है। यथा--

(१) मकर सीत बरसत विषम, कुमुद कमल कुम्हिलात,
वन-उपवन फीके लगत, पियरे जोइत पात।
पियरे जोइत पात, करत ज्वाला दारुन अति,
सो दूनौ बढ़ि जात, चलत मारुत प्रचंड गति।
भए नैक माहौठि, कठिन लागै लुठि हिमकर,
सेनापति गुन यहै, कुपित दंपति संगम कर।
(३।३२)

'दंपति संगम कर' कह कर स्पष्ट बता दिया है कि हेमन्त ऋतु में प्रकृति के साज किस प्रकार 'दाम्पत्य-रीति' को उद्दीप्त करते हैं।

(२) संयोग के समय सुखद लगने वाले पदार्थ वियोग के समय दुःखदायी हो जाते हैं। उद्दीप्त विरही की दशा का सेनापति ने सफल मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है—

केतकि, असोक, नव चंपक, बकुल कुल,
कौन धौं वियोगिनी कौं ऐसौ विकराल है।
सेनापति साँवरे की सूरति की सुरति कौं,
सुरति कराइ करि डारत बिहाल है।
दछिन-पवन एती ताहू की दवन जऊ,
सूनौ है भवन परदेस प्यारौ लाल है।
लाल है प्रवाल फूले देखत विसाल, जऊ
फूले और साल पै रसाल उर साल है।
(३।५)

वसन्त ऋतु में कामदेव अपने पंच बाणों को लेकर उपस्थित है। संभोग समय का स्मरण विरहिणी को विकल बना देता है। नूतन

पल्लवादि तो पहिले से ही थे, आम्रमंजरी नामक कामदेव के बाण ने तो उसे बस बेहाल ही कर डाला।

ठ—नखशिख--वर्णन:—

नायिका अंगों के सौंदर्य का वर्णन भी उद्दीपन की दृष्टि से किया गया है, स्वतन्त्र रूप में नहीं। यह कम बताया है कि प्यारी के नेत्र, कपोल आदिक कैसे हैं, उनके द्वारा नायक के हृदय में उद्दीप्त काम की व्यंजना अधिक है। यथा—

अंजन सुरंग जीते खंजन, कुरंग, मीन,
नैंक न कमल उपमा कौं नियरात है।
नीके, अनियारे, अति चपल, ढरारे प्यारे,
ज्यौं ज्यौं मैं निहारे त्यौं त्यौं खरौ ललचात है॥
सेनापति सुधा से कटाछनि बरसि ज्यावैं,
जिनकौं निरखि हियौ हरपि सिरात है।
कान लौं बिसाल, काम भूप के रसाल, बाल,
तेरे दृग देखे मेरौ मन न अघात है॥
(२।१)

नेत्रों के वर्णन के साथ नायक के 'जरा' और वाले भाव का भी चित्रण कर दिया गया है। इसी प्रकार 'केश-वर्णन' में देखत हरत रति कंत के कलेस हैं' (२।७) कह कर नायिका के केशों को देख कर नायक के हृदय में उत्पन्न काम-सुख की व्यंजना की गई है। सेनापति भृकुटि, दाँत, अधर आदि के सुन्दर वर्णन लिखे हैं। (देखें पहिली तरंग छन्द संख्या ३२, ३३ तथा दूसरी तरंग छन्द संख्या २, ३, ४, ५, ६, १०, १२, २५ तथा २६)।

एक छन्द में विविध अंगों का वर्णन कर दिया गया है। यथा—

सोहैं संग अलि, 'रही रति हू के उर सालि,
जोबन गरूर चाल चलति दुरद की।
कहै मुसकात बात, फूल से झरत जात,
सेनापति फूली मानौं चाँदिनी सरद की॥

ट—उद्दीपन-विभाग का वर्णनः—

उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत सेनापति ने 'ऋतु-वर्णन' (तीसरी तरंग) लिखा है और शृंगार वर्णन (दूसरी तरंग) के अन्तर्गत यथास्थान नायिक के अंग-उपांगों के सौन्दर्य का निरूपण किया है। यथा--

(१) मकर सीत बरसत विषम, कुमुद कमल कुम्हिलात,
बन-उपवन फीके लगत, पियरे जोउत पात।
पियरे जोउत पात, करत जाड़ौ दारुन अति,
सो दूनौ बढ़ि जात, चलत मारुत प्रचंड गति।
भए नैंक माहौंठि, कठिन लागै नुठि हिमकर,
सेनापति गुन यहै, कुपित दंपनि संगम कर।
(३।३२)

'दंपति संगम कर' कह कर स्पष्ट बता दिया है कि हेमन्त ऋतु में प्रकृति के साज किस प्रकार 'दाम्पत्य-रीति' को उद्दीप्त करते हैं।

(२) संयोग के समय सुखद लगने वाले पदार्थ वियोग के समय दुःखदायी हो जाते है। उद्दीप्त विरही की दशा का सेनापति ने सफल मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है—

केतकि, असोक, नव चंपक, बकुल कुल,
कौन धौं वियोगिनी कौं ऐसौ विकराल है।
सेनापति साँवरे की सूरति की सुरति कौं,
सुरति कराइ करि डारत बिहाल है।
दच्छिन-पवन एती ताहू की दवन जऊ,
सूनौ है भवन परदेस प्यारौ लाल है।
लाल है प्रवाल फूले देखत विसाल, जऊ
फूले और साल पै रसाल उर साल है।
(३।५)

वसन्त ऋतु में कामदेव अपने पंच बाणों को लेकर उपस्थित है। संभोग समय का स्मरण विरहिणी को विकल बना देता है। नूतन

पल्लवादि तो पहिले से ही थे, आम्रमंजरी नामक कामदेव के बाण ने तो उसे बस बेहाल ही कर डाला।

ठ—नखशिख--वर्णन:—

नायिका अंगों के सौंदर्य का वर्णन भी उद्दीपन की दृष्टि से किया गया है, स्वतन्त्र रूप में नहीं। यह कम बताया है कि प्यारी के नेत्र, कपोल आदिक कैसे हैं, उनके द्वारा नायक के हृदय में उद्दीप्त काम की व्यंजना अधिक है। यथा—

अंजन सुरंग जीते खंजन, कुरंग, मीन,
नैंक न कमल उपमा कौं नियरात है।
नीके, अनियारे, अति चपल, ढरारे प्यारे,
ज्यौं ज्यौं मैं निहारे त्यौं त्यौं खरौ ललचात है॥
सेनापति सुधा से कटाछनि बरसि ज्यावैं,
जिनकौं निरखि हियौ हरषि सिरात है।
कान लौं बिसाल, काम भूप के रसाल, बाल,
तेरे दृग देखे मेरौ मन न अघात है॥
(२।१)

नेत्रों के वर्णन के साथ नायक के 'जरा' और वाले भाव का भी चित्रण कर दिया गया है। इसी प्रकार 'केश-वर्णन' में देखत हरत रति कंत के कलेस हैं' (२।७) कह कर नायिका के केशों को देख कर नायक के हृदय में उत्पन्न काम-सुख की व्यंजना की गई है। सेनापति भृकुटि, दाँत, अधर आदि के सुन्दर वर्णन लिखे हैं। (देखें पहिली तरंग छन्द संख्या ३२, ३३ तथा दूसरी तरंग छन्द संख्या २, ३, ४, ५, ६, १०, १२, २५ तथा २६)।

एक छन्द में विविध अंगों का वर्णन कर दिया गया है। यथा—

सोहैं संग अलि, 'रहो रति हू के उर सालि,
जोवन गरूर चाल चलति दुरद की।
कहैं मुसकात बात, फूल से झरत जात,
सेनापति फूली मानौं चाँदिनी सरद की॥

छवि रही भरपूरि, पहिरे कपूर-धूरि,
नागरी अमर-मूरि मदन दरद की।
मुख मृग-लंछन सौं कटि मृग-राज की सो,
मृग के से दृग, भाल बेंदी मृगमद की॥
(२।११)

निम्न लिखित छन्द में सेनापति ने सोलह शृंगारों का वर्णन किया है—

नूपुर कौं झनकाइ मंद ही धरति पाइ,
ठाढ़ी आइ आँगन, भई ही साँझी चार सी।
करना अनूप कीनी, रानी मैन भूप की सी,
राजै रासि रूप की, बिलास कौं अधार सी।
सेनापति जाके दृग दूत ह्वै मिलन दौरि,
कहत अधीनता कौं होत हैं सिपारसी।
गेह कौं सिंगार सी, सुरत-सुख सार सी, सो
प्यारी मानौं आरसी, चुभी है चित आर सी॥
(२।२४)

नायिका के शृंगार-वर्णन में भी सेनापति ने मौलिकता से काम लिया है। उनका नायिक के हाथ की आरसी की ओर विशेष ध्यान है। शब्द चमत्कार द्वारा 'आरसी' पर यमक देकर उसकी मनोहर सुन्दरता का मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है।

सेनापति ने 'कवित्त रत्नाकर' के प्रारम्भ में कहा है कि हमारे काव्य में अनुपम रस-ध्वनि है—

सरस अनूप रस रूप या मैं धुनि है।
(१।७)

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सेनापति का ध्यान अलंकारों पर अधिक है, 'रस' तथा 'व्यंजना शक्ति' पर बहुत कम। 'ध्वनि' से अभिप्राय यहाँ 'वाच्य-ध्वनि' से ही लेना चाहिए। 'विवक्षित वाच्य ध्वनि' के उपभेद 'असंलक्ष्यक्रम—व्यंग्य ध्वनि' के अन्तर्गत

रसाभास, भावाभास भी आ जाते हैं। सेनापति ने 'रस ध्वनि' का प्रयोग सम्भवतः इसी अर्थ में किया है। निम्नलिखित 'शृंगार रस' के वर्णन में 'श्लेष' के मोह के कारण निश्चय ही रसाभास' है—

अरुन अधर सोहैं सकल बदन चंद,
मंगल दरस बुध बुद्धि कै बिसाल है।
सेनापति जासौं जुव जन सब जीवक हैं,
कवि अति मंद गति चलति रसाल है॥
तम ह्वै चिकुर केतु काम की विजय निधि,
जगत जगमगत जाके जोति जाल है।
अंबर लसति भुगवति सुख रासिन कौं,
मेरे जान बाल नवग्रहन की माल है॥
(१।३१)

६—ऋतु-वर्णन

सेनापति का ऋतु-वर्णन उद्दीपन की दृष्टि से किया गया है तथा वह सामाजिक परिस्थिति द्वारा बहुत कुछ प्रभावित है। उनके ऋतु-वर्णन में अलंकारों पर ध्यान रख कर वस्तुओं का अर्थ-ग्रहण किया गया है। वस्तुओं की संश्लिष्ट योजना द्वारा बिम्ब-ग्रहण कराने वाली शैली का अभाव ही समझना चाहिये। यथा—

पाउस निकास तातैं पायौ अवकास, भयौ,
जोन्ह कौं प्रकास, सोभा ससि रमनीय कौं।
विमल अकास, होत वारिज विकास सेना-
पति फूले कास, हित हंसन के हीय कौं।।
छिति न गरद मानौं रंगे हैं हरद सालि
सोहत जरद, को मिलावै हरि पीय कौं।
मत्त हैं दुरद, मिट्यौ खंजन दरद, रितु
आई है सरद सुखदाई सब जीय कौं
(३।३७)

शतपथ प्रतीत होता है कि शरद् ऋतु के मन मोहक रूप पर मोहित होकर कवि संश्लिष्ट योजना द्वारा वर्णन करना चाहता है, परन्तु परम्परा-निर्वाह के मोह के कारण वह स्वच्छ आकाश, विकसित कास आदि की ओर से ध्यान हटा कर 'हरिपीय' का स्मरण करने लगता है। इसी प्रकार—

(२) बरसै तुसार, बहै सीतल समीर नीर,
कंपमान उर क्यौंहू धीर न धरत है।

रांति न सिराति, सरसाति बिथा बिरह की,
मदन अराति जोर जोबन करत है॥
सेनापति स्याम हम धन हैं तिहारी, हमैं,
मिलो, बिन मिले, सीत पार न परत है।
और की कहा है, सबिता हू सीत रितु जानि,
सीत कौं सतायौ धन रासि में परत है॥
(३।४८)

यहाँ हेमन्त ऋतु की शीतल-पवन का वर्णन किया गया है। इस समय के प्राकृतिक उपकरण दम्पति को पास रहने के लिये विवश कर ही देते हैं। मनुष्यों की तो बिसात ही क्या है, हेमन्त के प्रभाव से परम प्रतापी मार्तण्ड भी धनि (स्त्री) की कोख में जा घुसता है। इन दिनों सूर्य धनि राशि पर होता है। 'धन' पर श्लेष है उसके अर्थ स्त्री और धनि राशि दोनों ही होते हैं।

(२) तब न सिधारी साथ, मीड़ति है अब हाथ,
सेनापति जदुनाथ बिना दुख ए सहैं।
चले मन-रंजन के, अंजन की भूली सुधि,
मंजन की कहा उनही के गूंदे केस हैं॥
बिछुरे गुपाल, लागैं फागुन कराल, तातैं,
भई है बिहाल, अति मैले तन भेस हैं।
फूल्यो है रसाल, सो तौ भयौ उर साल सखी,
डार न गुलाल, प्यारे लाल परदेस हैं॥
(३।५९)

फाल्गुन कालीन प्रकृति के साज-शृंगार का वर्णन तो नाम मात्र को है, फाल्गुन की मस्त पवन और आम्र-मंजरी की मस्त सुगन्ध का विरहिणी के हृदय पर क्या प्रभाव पड़ता है अथवा पड़ सकता है, बस इसी के निरूपण में कवि उलझ गया है। साथ ही इस वर्णन से यह भी ध्वनि निकलती है कि तत्कालीन सामाजिक किस प्रकार उत्साह के साथ होली का त्यौहार मनाते थे। निम्नलिखित

वर्णन में होली के त्यौहार, त्यौहार क्या, होली के हुड़दंग का सजीव वर्णन है—

(४) चौरासी समान, कटि किंकिनी विराजति है,
साँकर ज्यौं पग-जुग घुँघरू बनाई है।
दौरी वे सँभार, उर अंचल उघरि गयौ,
उच्च कुच कुंभ मनु, चाचरि मचाई है॥
लालन गुपाल, घेरि केसरि कौं रंग लाल,
भरि पिचकारी मुँह ओर कौं चलाई है।
सेनापति धायौ मन्त काम कौं गयंद जानि,
चोप करि चपैं मानौं चरखी छुटाई है॥

(३।६०)

होली का खेल है अथवा कामदेव क जगाकर मस्त कर देने की तैयारियाँ हो रही हैं।

मनोवैज्ञानिक एवं काम विज्ञान के पंडितों का कहना है कि वसन्त ऋतु में पुरुषों को तथा पावस ऋतु में स्त्रियों को कामदेव विशेष रूप से सताते हैं। पावस ऋतु द्वारा कामदेव के उद्दीप्त होने का वर्णन देखिए—

(५) ग्रीषम तपति हर, प्यारे नव. जलधर,
सेनापति सुखकर जे हैं दंपतीन कौं।
झुव तरवर जीव सजत सकल घर,
धरत कदम-तरु कोमल कलीन कौं।
सुनि घनघोर मोर कूकि उठे चहूँ ओर,
दादुर करत सोर मोर जामिनीन कौं।
काम धरे बाढ़ तरवारि तीर, जम-डाढ़,
आवत असाढ़ परी गाढ़ विरहीन कौं।

(३।२१)

आई रितु पाउस कृपा उस न कीनी कंत,
छाइ रह्यौ अंत उर विरह दहत है।

गरजत घन तरजत है मदन, लर—,
जत तन-मन नीर नैननि बहत है।
अंग अंग भंग, बोलै चातक विहंग आन,
सेनापति स्याम संग रंगहि चहत हैं।
धुनि सुनि कोकिल की विरहिन को किलकी,
केका के सुने तैं प्रान एकाके रहत हैं।
(३।२५)

सारांश यह है कि सेनापति ने यह तो कम बताया है कि मौसम कैसा है, यह अधिक बताया है कि उसका हमारी शृंगार भावना पर क्या प्रभाव पड़ता है। यथा—

(७) लाल लाल केसू फूलि रहे हैं विसाल,
स्याम रंग भेंटि मानौं मसि मैं मिलाए हैं।
तहाँ मधु काज आइ बैठे मधुकर पुंज,
मलय पवन उपवन वन धाए हैं।
सेनापति माधव महीना मैं पलास तरु,
देखि देखि भाउ कविता के मन आए हैं।
आधे अन सुलगि,सुलगि रहे आधे, मानौं,
विरही दहन काम क्वैल परचाए हैं।
(३।४)

विरहावस्था में संयोग के समय सुखदायी एवं आकर्षक प्रतीत होने वाली वस्तुऐं कितनी दुःखदायी एवं भयंकर बन जाती हैं, यहाँ इसी बात का मनोवैज्ञानिक ढंग पर सुन्दर वर्णन किया गया है। फूले हुये टेसू के फूलों को कामदेव द्वारा सुलगाए गए कोयले बता कर कवि ने विरही का कलेजा ही निकाल कर रख दिया है। सेनापति के ऋतु वर्णन के अन्तर्गत वसन्त, ग्रीष्म आदिक छओ ऋतुओं का वर्णन तो किया ही है, साथ ही बीच में श्रावण, भादों आदिक १२ ओं महीनों की चर्चा करके बारहमासे वाली परिपाटी

भए नैंक माह्यौठि, कठिन लागै सुठि हिमकर।
सेनापति गुन यहै, कुपित दंपति संगम कर॥
(३६२)

इस छन्द के अन्तर्गत 'कुपित दंपति संगम कर' वाक्यांश आ जाने के कारण यह वर्णन उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत चला गया है, अन्यथा ऊपर से नीचे तक हेमन्त ऋतु में उपलब्ध होने वाली समस्त सामग्री की अत्यन्त विशद एवं संश्लिष्ट योजना है।

सामाजिक परिस्थितियों का विशेष प्रभाव

जैसा हम अन्यत्र निवेदन कर चुके हैं, उन दिनों समाज विलास प्रिय हो रहा था। शासक-वर्ग के लोगों को भोग-विलास की समस्त सामग्री उपलब्ध थी। वे महलों में ऐश किया करते थे और उनके रनि-वास पायलों की रुन-झुन से गूंजा करते थे। उनके यहाँ वहु मूल्य रत्न-जटित वस्त्राभूषणों की कोई कमी न थी। महलों में रहने वाली वृद्धाएँ कुटनियों का काम करतीं और लड़कियों को फुसला कर लाया करती थीं। नगरों में चारों ओर उपवन, सरोवर आदिक विलास के स्थान बने हुए थे। सारांश यह कि विलास-प्रियता साधारण जनता का आदर्श बनी हुई थी।

कवियों के सम्मुख दो काम थे। जनता की वाह वाणी लूटना तथा आश्रय दाताओं द्वारा पुरस्कृत होना। पुरस्कार प्राप्त करने के लिए उन्हें दो काम करने पड़ते थे। (१) शब्द-चमत्कार द्वारा पांडित्य- प्रदर्शन करके आश्रयदाता पर अपना सिक्का जमाना तथा शृंगार परक वर्णनों द्वारा उनके कानों में मकरध्वज की पिचकारियाँ छोड़ना और (२) उनके शौर्य एवं वैभव का वढ़ा-चढ़ा कर अत्युक्ति पूर्ण वर्णन करना।

वादशाहों तथा राजाओं के आश्रित होने तथा मुँह लगे होने के कारण कविगण स्वयं ही वड़े वैभव शाली थे। वे महलों में रहा करते तथा कुश्ते खाकर खसरवानों में पड़े रहते थे। सारांश यह

है कि विलास उनका जीवन था और विलास ही उनका आदर्श था। महलों का वैभव उनकी आँखों में सदैव झूमा करता था। सेनापति भी इस लोक-रुचि एवं काव्य-रुचि के अपवाद न थे। उनकी काव्य-रचना में ये समस्त अवयव, विलास, वैभव आदि स्पष्ट ही परिलक्षित होते हैं। यथा—

× × × ×

(१) व्याकुल वियोगी, जोग कै सकै न जोगी, तहाँ
विहरत भोगी सेनापति सुख साज के।
(३।२)

(२) सरस सुधारी राज-मंदिर मैं फुलवारी,
मोर करैं सोर, गान कोकिल विराव के।
× × × ×
चैत में प्रभात, साथ प्यारी अलसात, लाल
जात मुसकात, फूल बीनत गुलाब के।
(३।६)

(३) जेठ नजिकाने सुधरत खसखाने, तल
ताख तहखाने के सुधारि झारियत हैं।
होति है मरम्मति विविध जल-जंत्रन की,
ऊँचे ऊँचे अटा, ते सुधा सुधारियत हैं।
सेनापति अतर, गुलाब, अरगजा साजि,
सार तार हार मोल लै लै धारियत हैं।
ग्रीषम के वासर वराइबे कौं सीरे सब,
राज-भोग काज साज यौं सम्हारियत हैं।
(३।७)

वर्णन के द्वारा यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उन दिनों राजा और प्रजा दोनों ही कितने विलास प्रिय हो गए थे तथा भोग-विलास की सामग्री की कैसी प्रचुरता थी!

(४) प्रात नृप न्हात, करि आसन वसन गात,
पैंधि सभा जात जौं लौं वासर सुहात है।
पीछे अलसानें, प्यारी संग सुख साने, विह
रत खसखाने, जब घाम नियरात हैं॥
× × × ×
(३।१३)

शासकों की दशा यह थी कि राज-काज उनके लिए गौण था और विलास मुख्य कार्य था। घण्टे आध घण्टे के लिए सभा में आकर थोड़ी देर तक राजकीय एवं शासन सम्बन्धी चर्चा कर ली या न कर ली। पहिले न्हाने-धोने में समय व्यतीत हो गया और फिर ७ बजते-बजते धूप चढ़ आई और वे तहखाने में आराम करने के लिए चले गए। राज-व्यवस्था के लिए चबाने पड़ते हैं लोहे के चने और सहने पड़ते हैं हिस-प्रताप के कठिन कसाले! इन सब बातों की वहाँ किसको फुरसत थी? सन्ध्या समय का कार्य-क्रम भी देख लीजिए—

(५) काम के प्रथम जाम, विहरैं उसीर धाम,
साहिब सहित बाम, घाम बितवत हैं।
नैंक चेत साँझ, जाइ बैठत सभा के माँझ
भूपन वसन फेरि और पहिरत हैं॥
× × × ×
(३।१४)

इतना ही क्यों? सुबह से शाम तक तहखाने में पड़े रहने का यह नतीजा था कि चौबीस घण्टे रात ही प्रतीत होती थी—'काल्हि की सी कही कोरैं भोर की कहत हैं।'

इतनी देर के लिए भी बाहर आकर बैठना मुश्किल था, जब तक ये सब इन्तज़ाम न हों—

(६) उछरैं सलिल, जल-जन्त्र ह्वै विमल उठैं,
सीतल सुगंध मंद लहर समीर की।

भीने हैं गुलाव तन सने हैं अरगजा सौं,
छिरकी पटीर-नीर टाटी तीर-तीर की ॥
(३।१७)

× × × ×

वहाँ तो ऐसे ऐसे इन्तजाम किए जाते थे गरमी में जाड़े का मजा आ जाए। आगरा और दिल्ली को शिमला और मंसूरी बना दिया जाय—

(७) रजनी के समै विन सीरक न सोयौ जात,
प्यारी तन सुथरी निपट सुखदाई है।
रंगित सुवास राखैं भूपति रुचिर साल,
सूरज की तपति किरनि तन ताई है॥
सीतल अधिक यातैं चंदन सुहात परै,
आँगन ही कल ज्यौं त्यौं अगिनि वराई है।
ग्रीपम की रितु हिम रितु दोऊ सेनापति,
लीजियै समुझि एक भाँति सी वनाई है॥
(३।१६)

इतना ही क्यों, राजमहलों में ग्रीष्म ऋतु में षट् ऋतुओं का आनन्द आता था—

(८) छूटत फुहारे सोई वरसा सरस रितु,
और सुखदाई है सरद छिरकाइ की।
हेमंत सिसिर हू तैं सीरे खसखाने, जहाँ
छिन रहै तपति मिटति सव काई की॥
फूले तरुवर, फुलवारी फूल सौं भरत,
सेनापति शोभा सो वसंत के सुभाइ की
ग्रीपम के समै साँझ, राज महलन माँझ
पैयति है सोभा षट्-रितु समुदाय की॥
(३।२०)

(और भी देखें तीसरी तरंग छन्द संख्या २२, २३,) ज़रा जाड़े के ठाट भी देख लीजिए—

(६)   प्रात उठि आइबे कौं, तेलहिं लगाइबे कौं,
मलि मलि न्हाइबे कौं गरम हमाम है।
ओढिबे कौं साल, जे बिसाल हैं अनेक रंग,
बैठिबे कौं सभा, जहाँ सूरज कौ घाम है॥
धूप कौं अगर, सेनापति सोंधौ सौरभ कौं,
सुख करिबे कौं छिति अंतर कौं धाम है।
आए अगहन, हिम-पवन चलन लागे,
ऐसे प्रभु लोगन कौं होत बिसराम है॥
(३।४३)

इस प्रकार से अपने शरीर को आराम देना उन दिनों की प्रभुता का आदर्श था।

उन दिनों राजा और प्रजा के बीच रँगरलियाँ मनाने का रिवाज जोरों पर था। कविगण इन्हीं के बीच रहते थे और इन्हीं के वर्णन इनकी कविताओं के बीच लिखे जाते थे। सेनापति के द्वारा लिखे गए निम्नलिखित होली के उत्सव द्वारा यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है—

नवल किसोरी भोरी केसरि तैं गोरी, छैल
होरी मैं रही है मद जोवन के छकि कै।
चंपे कैसौ ओज, अति उन्नत उरोज पीन,
जाके बोझ खीन कहि जात है लचकि कै॥
लाल है चलायौ, ललचाइ ललना कौं देखि,
उघरारौ उर, उरबसी ओर तकि कै।
सेनापति सोभा कौं समूह कैसे कह्यौ जात,
रह्यौ है गुलाल अनुराग सौं झलकि कै॥
(३।६१)

श्रृंगार की अत्यधिक चर्चा एवं कामदेव के आवाहन के फल-

स्वरूप जीवन में मर्यादा का अतिक्रमण हो जाना स्वाभाविक ही है। ऐसे जीवन की चर्चा करने वाली कविता अश्लीलत्व दोष से मुक्त होनी ही चाहिए। यथा—

× × × × ×

(१) पूस में तिया के ऊँचे कुच-कनकाचल मैं,
गरुवैं गरम भई, सीत सौं लरति है।
(३।५४)

× × × ×

(२) मानौं भीत जानि, महा सीत तैं पासारि पानि,
छतियाँ की छाँह राख्यौ पाउक छिपाइ कै।
(३।५५)

× × × ×

(३) सेनापति केली बिन, सुन री सहेली, माह
मास न अकेली बन-बेली बिलसति है।
(३।५६)

× × × ×

(४) सोए संग सब राती सीरक परति छाती,
पैयत रजाई नैंक आलिंगन कीने तैं।
उर सौं उरोज लागि होत हैं दुसाल वेई,
सुथरी अधिक देह कुन्दन नवीने तैं॥
तन सुख रासि जाके तन के तन की छुवैं,
सेनापति थिरमा रहै समीप लीने तैं।
सब सीत हरन. वसन कौं समाज प्यारी,
सीत क्यौं न हरै उर अंतर के दीने तैं॥
(३।५८)

उपर्युक्त विवेचन के निष्कर्षरूप हम कह सकते हैं कि सेनापति के हृदय में प्रकृति के प्रति पर्याप्त अनुराग था और उन्होंने प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण भी किया था, किन्तु परम्परा तथा सामाजिक

(और भी देखें तीसरी तरंग छन्द संख्या २२, २३,) ज़रा जाड़े के ठाट भी देख लीजिए—

(६) प्रात उठि आइबे कौं, तेलहिं लगाइबे कौं,
मलि मलि न्हाइबे कौं गरम हमाम है।
ओढ़िबे कौं साल, जे बिसाल हैं अनेक रंग,
बैठिबे कौं सभा, जहाँ सूरज कौ घाम है॥
धूप कौं अगर, सेनापति सोंधौ सौरभ कौं,
सुख करिबे कौं छिति अंतर कौ धाम है।
आए अगहन, हिम-पवन चलन लागे,
ऐसे प्रभु लोगन कौं होत बिसराम है॥
(३।४३)

इस प्रकार से अपने शरीर को आराम देना उन दिनों की प्रभुता का आदर्श था।

उन दिनों राजा और प्रजा के बीच रँगरलियाँ मनाने का रिवाज जोरों पर था। कविगण इन्हीं के बीच रहते थे और इन्हीं के वर्णन इनकी कविताओं के बीच लिखे जाते थे। सेनापति के द्वारा लिखे गए निम्नलिखित होली के उत्सव द्वारा यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है—

नवल किसोरी भोरी केसरि तैं गोरी, छैल
होरी मैं रही है मद जोवन के छकि कै।
चंपे कैसौ ओज, अति उन्नत उरोज पीन,
जाके बोझ खीन कटि जात है लचकि कै॥
लाल है चलायौ, ललचाइ ललना कौं देखि,
उघरारौ उर, उरबसी ओर तकि कै।
सेनापति सोभा कौ समूह कैसे कह्यौ जात,
रह्यौ है गुलाल अनुराग सौं झलकि कै॥
(३।६१)

शृंगार की अत्यधिक चर्चा एवं कामदेव के आवाहन के फल-

स्वरूप जीवन में मर्यादा का अतिक्रमण हो जाना स्वाभाविक ही है। ऐसे जीवन की चर्चा करने वाली कविता अश्लीलत्व दोष से मुक्त होनी ही चाहिए। यथा—

× × × × ×

(१) पूस में त्रिया के ऊँचे कुच-कनकाचल मैं,
गढ़वै गरम भई, सीत सौं लरति है।
(३।४४)

× × × ×

(२) मानौं भीत जानि, महा सीत तैं पासारि पानि,
छतियाँ की छाँह राख्यौ पाउक छिपाइ कै।
(३।४५)

× × × ×

(३) सेनापति केली बिन, सुन री सहेली, माह
मास न अकेली बन-बेली बिलसति है।
(३।४६)

× × × ×

(४) सोए संग सब राती सीरक परति छाती,
पैयत रजाई नैंक आलिंगन कीने तैं।
उर सौं उरोज लागि होत हैं दुसाल वेई,
सुथरी अधिक देह कुन्दन नवीने तैं॥
तन सुख रासि जाके तन के तन कौ छुवैं,
सेनापति थिरमा रहै समीप लीने तैं।
सब सीत हरन, बसन कौं समाज प्यारी,
सीत क्यौं न हरै उर अंतर के दीने तैं॥
(३।५८)

उपर्युक्त विवेचन के निष्कर्षरूप हम कह सकते हैं कि सेनापति के हृदय में प्रकृति के प्रति पर्याप्त अनुराग था और उन्होंने प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण भी किया था, किन्तु परम्परा तथा सामाजिक

एवं साहित्यिक परिस्थितियों के कारण उनके प्रकृति-वर्णन संश्लिष्ट न हो सके। कई स्थानों पर वे प्रकृति के रम्य रूपों से प्रभावित होकर संश्लिष्ट चित्रण करने का उद्योग सा करते दिखाई पड़ते हैं, परन्तु उनमें उद्दीपन की भावना अनायास ही आ जाती है। ग्रीषम ऋतु से वे विशेष प्रभावित जान पड़ते हैं। ऋतु-वर्णन में सेनापति ने अपने व्यापक ज्ञान एवं सूक्ष्म-निरीक्षण का सफल एवं समुचित उपयोग किया है। उमाशंकर शुक्ल के शब्दों में "सेनापति के ऋतु-वर्णन में ऋतुओं के उत्कर्ष को वर्णित करने की चेष्टा विशेषरूप से पाई जाती है। ऐसे वर्णन अलंकार-प्रधान हो गए हैं।"

७—भक्ति-भावना

सेनापति ने चौथी और पाँचवीं, इन दो तरंगों में अपनी भक्ति भावना व्यक्त की है। उन्होंने मुख्यतया राम का गुण-गान किया है। अतः वे राम-भक्ति-शाखा के कवियों की परम्परा में रखे जा सकते हैं। इनकी भक्ति कट्टरतापन लिए हुए नहीं, अपितु अत्यन्त उदारतापूर्ण है। जिस तरह गोस्वामी तुलसीदासजी ने राम गीतावली के साथ कृष्ण-गीतावली लिखकर और शिव को राम-कथा तथा राम-भक्ति का सबसे बड़ा अधिकारी बता कर, विभिन्न सम्प्रदायों और मतों का एकीकरण किया, उसी प्रकार सेनापति ने भी विभिन्न देवताओं के प्रति पूज्य भाव प्रदर्शित किया है। यथा—

राधा-कृष्ण-सम्बन्धी—

पान चरनामृत कौं, गान गुन-गनन कौं,
हरि-कथा सुनि सदा हिय कौं हुलसिबौ।
प्रभु के उतीरन की, गूदरियौ चीरन की,
भाल, भुज, कंठ, उर छापन कौं, लसिबौ॥
सेनापति चाहत है सकल जनम भरि,
वृन्दावन सीमा तैं न बाहिर निकसिबौ।
राधा-मन रंजन की सोभा नैन-कंजन की,
माल गरे गुंजन की, कुंजन कौं बसिबौ॥

(५।२१)

इससे स्पष्ट हो जाता है कि सेनापति धर्म के बाह्य स्वरूप तक के विरोधी न थे। इस छन्द को पढ़ कर ऐसा भ्रम हो सकता है कि

एवं साहित्यिक परिस्थितियों के कारण उनके प्रकृति-वर्णन संश्लिष्ट न हो सके। कई स्थानों पर वे प्रकृति के रम्य रूपों से प्रभावित होकर संश्लिष्ट चित्रण करने का उद्योग सा करते दिखाई पड़ते हैं, परन्तु उनमें उद्दीपन की भावना अनायास ही आ जाती है। ग्रीषम ऋतु से वे विशेष प्रभावित जान पड़ते हैं। ऋतु-वर्णन में सेनापति ने अपने व्यापक ज्ञान एवं सूक्ष्म-निरीक्षण का सफल एवं समुचित उपयोग किया है। उमाशंकर शुक्ल के शब्दों में "सेनापति के ऋतु-वर्णन में ऋतुओं के उत्कर्ष को वर्णित करने की चेष्टा विशेषरूप से पाई जाती है। ऐसे वर्णन अलंकार-प्रधान हो गए हैं।"

सेनापति वृन्द्रावन के किसी गोसाईं के चेले थे। परन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं है।

शिव-सम्बन्धी—

सोहति उतंग, उत्तमंग, ससि संग गंग,
गौरि अरधंग, जो अनंग प्रतिकूल है।
देवन कौं मूल, सेनापति अनुकूल, कटि
चाम सारदूल कौं, सदा कर त्रिसूल है॥
कहा भटकत! अटकत क्यौं न तासौं मन,
जातैं आठ सिद्धि नव निद्धि रिद्धि तूल है।
लेत ही चढ़ाइबे कौं जाके एक बेल पात,
चढ़त अगाऊ हाथ चारि फल-फूल है॥
(५।४५)

तथा—

पढ़ी और विद्या, गई छूटि न अविद्या, जान्यौ
अच्छर न एक, खोयौ कैयौ तन मन है।
तातैं कीजै गुरु, जाइ जगत गुरू कौं, जातैं
ज्ञान पाइ जीउ होत चिदानंद घन है॥
मिटत हैं काम-क्रोध ऐसौ उपजत बोध,
सेनापति कीनौ सोध, कह्यौ निगमन है।
बारानसी जाइ, मनिकर्निका अन्हाइ, मेरौ
संकर तैं राम-नाम पढ़िबे कौं मन है॥
(५।४४)

इस छन्द में उनकी शिव-भक्ति तो स्पष्ट है ही, साथ ही भी प्रतीत होने लगता है कि सेनापति जगद् गुरु शंकराचार्य 'वेदान्तवाद' से भी प्रभावित थे। इस छन्द में उन्होंने 'ज्ञान-प चर्चा की है। सम्भव है उनके ध्यान में कभी वैराग्य-ग्रहण की बात आई हो। उन्होंने कभी यदि 'वृन्दावन' में रह कर गोसाईं का चेला बन जाने की बात सोची हो तो कभी यह

(५।२९)

इस छन्द को पढ़ कर ऐसा प्रतीत होने लगता है कि सेनापति निर्गुण मतावलम्बी थे। इस छन्द में वे मूर्ति-पूजा का खण्डन सा करते हुए दिखाई देते हैं, वे पुष्पों से ढकी हुई प्रतिमा को भगवान मानना भ्रम बताते हैं तथा वे दृष्टि को अन्तर्मुखी करके 'निरंजन' से परिचय प्राप्त करने का उपदेश देते हुए दिखाई देते हैं।

परन्तु 'रामरसायन' के एक अन्य छन्द में उन्होंने निर्गुण और सगुण का स्वयं ही समन्वय कर दिया है—

दृगन सौं देखे विश्वरूप है अनूप जाकौं,
बुद्धि सौं विचारै निराकार निरधार है।

(५।१)

गोस्वामी जी ने भी ऐसी ही बात कही है—

एक दारुगत देखिइ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म विवेकू॥

निर्गुण ब्रह्म ज्ञान का विषय है और सगुण ब्रह्म भक्ति का।

एक मस्तिष्क की वृत्तियों की तुष्टि करता है, दूसरा हृदय की। दोनों का समन्वय ही भारतीय धार्मिक विचारधारा की विशेषता रही है, क्योंकि लक्ष्य की दृष्टि से दोनों बातें एक ही हैं। ज्ञाता और ज्ञेय की एकता 'ज्ञानमार्ग' का लक्ष्य है और भक्त और भगवान की एकता-जिसे मुक्ति कहते हैं भक्ति-मार्ग की एकता है। यही कारण है कि उदार एवं समझदार भक्त लोगों ने दोनों में कोई भेद नहीं समझा है।

सेनापति की निर्गुण मत सम्बन्धी रचना के विषय में उमाशंकर शुक्ल ने कवित्तरत्नाकर की भूमिका में लिखा है कि 'किन्तु इन विचारों को स्वयं सेनापति का नहीं कहा जा सकता यह तो देशकाल का प्रभाव है, जिससे प्रभावित होकर कवि उक्त कवित्त लिख गया है। सेनापति के समय में निर्गुण-भक्ति का काफी प्रचार था। गोस्वामी जी ने लोगों में फैली हुई इस विचारधारा का स्पष्ट शब्दों में निर्देश किया है। वे भगवद्भक्ति की चरम सीमा तक पहुँच गए थे, अत: उनके काव्य में निर्गुण-सम्प्रदाय का रंग चढ़ना असंभव था। किन्तु साधारण स्थिति के वैष्णवों का इन भावनाओं से कभी कभी प्रभावित हो जाना स्वाभाविक था।' हम इस विचार से सहमत नहीं हैं। हमारा विचार है कि जीवन की निरर्थकता देकर (पाँचवीं तरंग छन्द संख्या १२) सम्भव है प्रारम्भ में वे निर्गुण मत से प्रभावित हुए हैं, परन्तु उस मार्ग की कठिनाइयों एवं निर्गुण भक्ति की अव्यावहारिक बातों से उनका जी शीघ्र ही ऊब जाना कोई बड़ी बात नहीं है, और कुछ ही समय पश्चात् उन्होंने सगुण भक्ति वाले मार्ग को अपनाने का निश्चय कर लिया हो और अन्त तक वे उसी मार्ग पर चलते रहे हों। भगवान का लोक-व्यापी एवं लोक-रंजन-कारी स्वरूप ने सेनापति के हृदय को निश्चय ही अत्यधिक प्रभावित किया है। राम, कृष्ण और शिव की चर्चा तो हो चुकी, उन्होंने तो भगवान के नृसिंहावतार के प्रति भी अपने हृदय का निवेदन किया है—

अरि करि आँकुस विदार्‌यौ हरिनाकुस है,
दास कौं सदा कुसल, देत जे हरप हैं।
कुलिस करेरे, तोरा तमक तरेरे, दुख
दलत दरेरे कै, हरत कलमप हैं॥
सेनापति नर होत ताही तैं निडर, डर
तातैं तू न कर, वर करुना वरप हैं।
अति अनियारे, चन्द-कला से उजारे, तेई
मेरे रखवारे नरसिंह जू के नख हैं॥
(५।२६)

यह बता देना आवश्यक है कि सेनापति ने अपने इष्टदेव राम के सौन्दर्य का वर्णन तो नाम मात्र को ही किया है, उन्होंने उनकी शक्ति और भक्तवत्सलता (शील) की ही विशेष एवं सविस्तार वर्णन किया है।

एक सच्चे वैष्णव की भाँति से सेनापति ने तीर्थ, स्थान आदि का माहात्म्य भी स्वीकार किया है। 'शान्तरस' के उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत सेनापतिने 'रामरसायन' के अन्तर्गत गंगावर्णन सम्बन्धी १६ छन्द लिखे हैं। इनमें गंगा-माहात्म्य का वर्णन जी खोल कर लिखा गया है। गंगा की बड़ाई के सम्बन्ध में लिखी गई उक्तियाँ सुन्दर बन पड़ी हैं—

कुस लव रस करि गाई सुर धुनि कहि,
भाई मन संतन के त्रिभुवन जानी है।
देवन उपाई कीनो यहै भौ उतारन कौं,
विसद बरन जाकी सुधा सम बानी है।
भुवपति रूप देह धारी पुन्न सील हरि,
आई सुरपुर तैं धरनि सियरानी है।
तीरथ सरब सिरोमनि सेनापति जानी,
राम की कहानी गंगा-धार सी बखानी है।
(४।७६)

तथा—× × × ×

एकै है उपाय, राम-पाइन के पाइबे कों,
सेनापति वेद कहैं ग्रंथ की लकारिगे।
राम-पद-संगिनी, तरंगिनी है गंगा तातैं,
याहि पकरे तैं पाइ राम के पकरिगे।
(५।५५)

इतना ही नहीं भावावेश के कारण उन्होंने गंगा को शिवजी का ही रक्षा करने वाली बता दिया है—

काल तैं कराल कालकूट कंठ माँझ लसै,
व्याल उर माल, आगि भाल, सब ही लसैं।
व्याधि के अरंग ऐसे व्यापि रह्यौ आधौ अंग,
रह्यौ आधौ अंग सो सिवा की बकसीस मैं।
ऐसे उपचार तैं न लागती बिलात बार,
पैयती न वाकी तिल एकौ कहूँ ईस मैं।
सेनापति जिय जानी सुधा तैं सहस बानी,
जो पै गंगा रानी कौं न पानी होतौ सीस मैं।
(५।६०)

शिव का आधा शरीर तो पार्वती के कब्जे में है। शेष आधा अनेक व्याधियों का भंडार है—

कंठ में काल से भी विकराल विष है, हृदय पर सर्पों की माला पड़ी हुई है तथा मस्तक पर त्रिलोचन स्थित है। इन भयंकर वस्तुओं के होते हुए भी शिवजी की जो रक्षा हो सकी है, वह सुधा से सहस्त्र गुने प्रभाव वाले गंगा-जल के कारण ही है। अच्छा ही हुआ जो शिवजी ने गंगा को सिर पर धारण कर लिया, अन्यथा उनकी बुरी गति हुई होती?

सेनापति की भक्ति-भावना के मूल में सांसारिक सुखों के प्रति विरक्ति थी। इस वैराग्य भावना का कारण जो भी रहा हो। उन्हें आश्रयदाताओं की खुशामद करते करते निराश होना पड़ा हो,

जीवन में किसी के द्वारा अपमानित होना पड़ा हो अथवा अन्य कोई घटना घटी हो, परन्तु इतना सुनिश्चित है कि जीवन की नश्वरता का सदा अनुभव करने के पश्चात् ही सेनापति ईश्वरो-न्मुख हुए थे—

कीनौ बालापन बालकेलि मैं मगन मन,
लीनौ तरुनाई तरुनी कै रस तीर कौ।
अब तू जरा मैं पर्‌यौ मोह पींजरा मैं सेना,
पति भजु रामै जो हरैया दुख पीर कौ।
चितहि चितार, भूलि काहू न बिसार, प्यार,
नाहिं ऐसौ बार, न बचाइ है सरीर कौ।
लेहि देहि करि कै पुनीत करि लेहि देह,
जीबै अवलंब एक सुरसरि-नीर कौ।

(५।२६)

सेनापति राम के भक्त हैं और उन्होंने राम के नारायणत्व का प्रतिपादन किया है। उन्होंने नानाप्रकार के लोकोपकारी गुणों का वर्णन विस्तार के साथ किया है। सेनापति ने राम को ब्रह्म का पूर्णावतार बताया है—

बीर महाबली, धीर, धरम-धुरंधर है,
धरा मैं धरैया एक सारंग-धनुष कौ।
दानौ-कुल सालन, गयन फलि-गलन कौ,
दलन है देव द्विज दीनन के दुख कौ।
जग अभिराम, लोक बेद जाकौ नाम महा-
राज-मनि राम, धाम सेनापति सुख कौ।
तेज-पुंज सरौ, चंद सूर न समान जाके,
पूरौ अवतार भयौ पूरन पुरुष कौ।

(५।७)

राजा दशरथ के चारों पुत्रों को अथवा राम, भरतादि चारों भाइयों को ही सेनापति ने इसी रूप में देखा है—

सोहैं देह पाइ किधौं चारि हैं उपाय, किधौं
चतुरंग संपति के अंग निरधार हैं।
किधौं ए पुरुष रूप चारि पुरुषारथ हैं
किधौं वेद चारि धरे मूरति उदार हैं।
सब गुन आगर, उजागर, सरूप धीर,
सेनापति किधौं चारि सागर संसार हैं।
दीपति बिसाल किधौं चारि दिगपाल किधौं,
चारौ महाराजा दसरथ के कुमार हैं।
(४।८)

गोस्वामी तुलसीदास की भाँति सेनापति निश्चय ही राम-भक्त कवि हैं—

सुरतरु सार की सवाँरी है बिरंचि पचि,
कंचन खचित चिंतामनि के जराइ की।
रानी कमला कौं पिय-आगम कहन हारी,
सुरसरि सखी सुख दैनी प्रभु पाइ की।
वेद मैं बखानी, तीनि लोकन ठकुरानी,
सब जग जानी सेनापति के सहाइ की।
देव-दुख-दंडन भरत-सिर-मंडन, वे
वंदौं अघ-खंडन खराऊँ रघुराइ की।
(४।१)

सेनापति ने राम को तीनों लोकों का नायक बताया है (देखें चौथी तरंग छन्द संख्या ३, ४, ५) कहने का तात्पर्य यह है कि (१) सेनापति राम को ब्रह्म का पूर्णावतार मानते हैं। (२) राम का जन्म दुष्टों के विनाश एवं सन्तों के उद्धार के लिए हुआ था। और (३) देवी सीता उनकी 'शक्ति' हैं, तथा राम की कथा वेद-सम्मत है।

श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है। प्रेम के लिए आवश्यक है सौन्दर्य और श्रद्धा के मूल में विशेष गुणों की स्थिति अपेक्षित है। यही कारण है कि भक्त जन अपने इष्ट देव में अनन्त शक्ति

और अनन्त शील के साथ अनन्त सौन्दर्य का भी विधान करते आए हैं सेनापति ने भगवान् राम के पराक्रम एवं शील का वर्णन तो जी खोल कर किया ही, साथ ही यथा स्थान उनके सौन्दर्य का भी निरूपण किया है।

अपने इष्टदेव के अपार गुणों अथवा उनके महत्व को देखकर अपने में लघुत्व का अनुभव होना अनिवार्य है। दैन्य भक्ति भावना का एक अनिवार्य अंग है। यह सदा से भक्तों का बड़ा बल रहा है।

भक्त जब भगवान की विशालता एवं भक्त वत्सलता पर मनन करता है और देखता है कि कहाँ इतने महान् भगवान् और कहाँ उन्हें अपना बनाने का प्रयत्न करने वाला अथवा अपना समझने और बताने वाला इतना तुच्छ व्यक्ति मैं! तो उसका हृदय आत्म ग्लनि से भर जाता है। यही कारण है कि अपनी आत्मग्लानि का अनुभव करने में, अपने दोषों और अवगुणों का बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन करने में भक्तों को एक विचित्र प्रकार के सन्तोष का अनुभव होता है। सेनापति के काव्य में भक्त हृदय के ये समस्त अवयव परिलक्षित होते हैं। यथा—

क—<u>सौन्दर्य वर्णन:</u>—

पाँचौ सुरतरु कौं जौ एकै सुरतरु, एक
देह जौ वसन्त रति-कंत की बनाइयै।
बीते होनहार, चंद पून्यौ के सकल जोरि,
चंद करि एकै जो हगन दिखराइयै।
दसौ लोकपालन कौं एकै लोकपाल, एक
बारह दिनेस कौं दिनेस ठहराइयै।
सेनापति महाराजा राम कौं अनूप तब,
राज-तेज रूप नैंक बरनि बताइयै।

गोस्वामी जी के 'नील सरोरुह नील मणि नील नीर धर श्याम लाजहिं तन शोभा निरखि कोटि कोटि सतकाम' वाले दोहे का भाव आ जाता है--

आनन्द मगन चंद महा मनि-मन्दिर मैं,
रमैं सियराम, सुख सीमा हैं सिंगार की।
पूरन सरद-ससि सोभा सौं परस पाइ,
बाढ़ी है सहस गुनी दीपति अगार की।
भौन के गरभ, छवि छीर की छिटकि रही,
विविध रतन जोति अम्बर अपार की।
दोऊ विहसत विलसत सुख सेनापति,
सुरति करत छीर-सागर विहार की।
(४।२१)

राम के मनोमोहक रूप पर मोहिनी भी मोहित है—

तीन लोक ऊपर सरूप पारवती, जातैं,
संभु संग रंग, अरधंग प्रीति पाई है।
ताही पारवती के अछत मोहिनी के रूप,
मोहि कै महेस मति महा भरमाई है।
सोई राम मोहिनी के रूप कौं धरन हार,
जाके रूप मोह्यौ और बाल बिसराई है।
सेनापति यातैं सुर नर सुन्दरीन हू तैं,
सुन्दर परम सिय रानी की निकाई है।
(४।२२)

अगले छन्द संख्या २३, २४ में सीता के अनुपम सौन्दर्य का वर्णन किया है।

ख—<u>पराक्रम और शील का वर्णन</u>:—

'रामायण-वर्णन' (चौथी तरंग) में राम के पराक्रम का तथा 'रामरसायन-वर्णन' (पाँचवी तरंग) में राम के शील का वर्णन है। पाँचवी तरंग 'निर्वेद' की भावना से ओत-प्रोत है।

× × × ×

गोस्वामी जी के 'नील सरोरुह नील मणि नील नीर धर श्याम राजहिं तन शोभा निरखि कोटि कोटि सतकाम' वाले दोहे का भाव आ जाता है--

आनन्द मगन चंद महा मनि-मन्दिर मैं,
रमैं सियराम, सुख सीमा हैं सिंगार की।
पूरन सरद-ससि सोभा सौं परस पाइ,
बाढ़ी है सहस गुनी दीपति अगार की।
भौन के गरभ, छवि छीर की छिटकि रही,
विविध रतन जोति अम्बर अपार की।
दोऊ बिहसत बिलसत सुख सेनापति,
सुरति करत छीर-सागर बिहार की।
(४।२१)

यद्यपि इसमें तीनों लोकों के सामूहिक सौन्दर्य की च
गई है, तथापि सेनापति का ध्यान राम के तेज की ओर ही
गया ।

× × × ×

चख, चित, चाहति हैं, सूरति सराहति है,
बाला चन्द्र-मुखी चन्द्रसालन में चढ़ि कै।
(४।१३)

× × × ×

दसरथ लाल के बदन-अरविंद की।
(४।१७)

× × × ×

चैन के परम ऐन, राखे करि नैंन नैंक,
निरखि निकाई इंदु सुन्दर बदन की।

× × × ×

सिय रघुराई जू कौं माल पहिराई लौन,
राई करि वारी सुन्दराई त्रिभुवन की।
(४।१८)

यहाँ सीताराम की मुख-छवि पर तीनों लोकों का सौन्दर्य न्यौ
छावर कर दिया है और निम्नलिखित छन्द में राम के मुख को
चन्द्रमा के समान बताया है—

× × × ×

कुँअर मयंक-मुख ! कंकन है सिय कौ।
(४।१९)

तथा—दर्पन के दीपन में दंपति की झाँई परी,
चंद छबि मानौं मध्य मुकुर निकट के।
(४।२०)

निम्नलिखित छन्द में राम और सीता के सौन्दर्य के सम्मुख
रति, श्रृंगार, काम, चन्द्र आदि सबकी सीमा बना दिया है।

गोस्वामी जी के 'नील सरोरुह नील मणि नील नीर धर यम लाजहिं तन शोभा निरखि कोटि कोटि सतकाम' वाले दोहे का भाव आ जाता है--

आनन्द मगन चंद महा मनि-मन्दिर मैं,
रमैं सियराम, सुख सीमा हैं सिंगार की।
पूरन सरद-ससि सोभा सौं परस पाइ,
बाढ़ी है सहस गुनी दीपति अगार की।
भौन के गरभ, छबि छीर की छिटकि रही,
विविध रतन जोति अम्बर अपार की।
दोऊ विहसत बिलसत सुख सेनापति,
सुरति करत छीर-सागर विहार की।
(४।२१)

राम के मनोमोहक रूप पर मोहिनी भी मोहित है—

तीन लोक ऊपर सरूप पारवती, जातैं,
संभु संग रंग, अरधंग प्रीति पाई है।
ताही पारवती के अछत मोहिनी के रूप,
मोहि कै महेस मति महा भरमाई है।
सोई राम मोहिनी के रूप कौं धरन हार,
जाके रूप मोह्यौ और बाल बिसराई है।
सेनापति यातैं सुर नर सुन्दरीन हू तैं,
सुन्दर परम सिय रानी की निकाई है।
(४।२२)

अगले छन्द संख्या २३, २४ में सीता के अनुपम सौन्दर्य का वर्णन किया है।

ख—<u>पराक्रम और शील का वर्णन</u>:—

'रामायण-वर्णन' (चौथी तरंग) में राम के पराक्रम का तथा 'रामरसायन-वर्णन' (पाँचवी तरंग) में राम के शील का वर्णन है। पाँचवी तरंग 'निर्वेद' की भावना से ओत-प्रोत है।

× × × ×

दीरघ उदार भुव-भार के हरन हार,
पुजवन हार सेनापति मन काम के।
साजत समर वर, गाजत जगत पर,
राजत प्रबल भुज दोऊ राजा राम के।
(४।१०)

स्वयंवर के प्रसंग को लेकर अगले ६ कवित्तों में केवल राम के तेज का वर्णन है। दूर से देखकर ही पता चल जाता है कि राजा राम समस्त देवताओं के स्वामी हैं—

× × × ×

बिन कहे, दूर तैं बिलोकत ही जानी जाति,
बीस बिसे दसौं दिगपालन कौं पति है।
(४।१४)

इतने बलशाली एवं तेजवान राम में शील भी अपार है। परशु-राम उनके प्रति सब कुछ कह रहे हैं, परन्तु वे चुपचाप सुन लेते हैं। भयवश नहीं, अपितु ब्राह्मण के प्रति आदर-भाव के कारण—

× × × ×

आज जामदग्नि ! जानतेऊ एक घरी माँझ,
होती जौ न न्यारी यह जिरह जनेऊ की।
(४।२७)

× × × ×

सेनापति ऐसे राम-बान तऊ बिप्र हेत,
देखत जनेऊ खैंचि राखैं निज बल कौं।
(४।२८)

'राम' की चरण-रज अपार बल देने की शक्ति रखती है। इसे धारण करने वाले हनुमान ने अकेले ही समस्त लंका-वासियों के छक्के छुटा दिए थे--

सेनापति महाराजा राम की चरन रज,
माथे लै चढ़ाई, है बढ़ाई देह बल मैं।
(४।३३)

× × × ×

आगम विचारि राम-बान कौं अगाऊ किधौं,
सागर तैं पर्यौ बड़वानल निकसि कै।
(४।३५)

राम के बाण का प्रभाव तो देखिए कि उसके तेज पुंज के कारण विशाल सागर का पानी इस तरह सूखा जा रहा है, जिस प्रकार गर्म तवे पर पड़ा हुआ पानी क्षण भर में छनक जाता है—

सेनापति राम-बान पाउकै बखानै कौन,
जैसी सिख दीनी सिंधुराज कौं रिसाइ कै।
ज्वालन के जाल जाइ पजरे पताल, इत
छै गयौ गगन, गयौ सूरजौं समाइ कै॥
परे मुरझाइ ग्राह-सफर फरफराइ,
सुर कहैं हाइ को बचावै नद-नाइ कै।
बूँद ज्यों तए की तची, कमठ की पीठ पर,
छार भयौ जात छीर सिंधु छननाइ कै॥
(४।४१)

राम के शील एवं भक्त वत्सलता का यह स्वरूप बड़ा हारी है—

धीवर कौं सखा है, सनेही बनचरन कौं,
गीध हू कौं दूत सबरी कौं मिहमान है।
पंडव कौं दूत, सारथी है अरजुन हू कौं,
छाती विप्र-लात कौं धरैया तजि मान है॥
ब्याध अपराध-हारी, स्वान समाधान कारी,
करै छरीदारी, बलि हू कौं दरवान है।

ऐसौ अवगुनी ! ताके सेइवे कौं तरसत,
जानियै न कौंन सेनापति के समान है ॥
(५।१६)

घ—दैन्य एवं आत्म-निवेदन—

ऐसे सीयापति ने न मालूम क्या सोचकर सेनापति को अपने सेवक का पद दे दिया।

गिरत गहत बाँह, घाम में करत छाँह
पालत विपत्ति माँह, कृपा-रस भीनौ है।
तन कौं बसन देत, भूख कौं असन, प्यासे
पानी हेतु मन विन माँगे आनि दीनौ है ॥
चौकी तुही देत अति हेतु कै गरुड़-केतु !
हौं तौ सुख सोवत न सेवा परवीनौ है।
आलस की निधि, बुधि बाल, सु जगतपति !
सेनापति सेवक कहा धौं जानि कीनौ है ॥
(५।२४)

इस प्रकार के दैन्य और आत्मग्लानि के भाव 'रामरसायन' में भरे पड़े हैं। यथा—

निगमन गायौ, गजराज काज धायौ, मोहिं
संतन वतायौ, नाथ पन्नगारि-केत है।
सेनापति फेरत दुहाई तोहि टेरत है,
हेरत न इत, जानियै न कित चेत है ॥
और हैं न तोसे, सोवे कौंन के भरोसे कछू
ह्वै रहे इकौसे, हौं न जानौं कौन हेत है।
तू कृपा-निकेत, तेरौ दीनन सौं हेत मोहि,
मोहि दुख देत, सुधि मेरी क्यों न लेत हैं ॥
(५।२६)

ऐसे प्रभु को अपने आपको सौंप कर सेनापति निश्चिंत हो
।

कोई परलोक सोक भीत अति वीतराग,
तीरथ के तीर वसि पी रहत नीर ही।
कोई तपकाल वाल ही तैं तजि गेह-नेह,
आगि करि आस-पास जारत सरीर ही।
कोई छोड़ि भोग, जोग धारना सौं मन जीति
प्रीति सुख-दुख हू में साधत-समीर ही।
सोवै सुख सेनापति सीतापति के प्रताप
जाकी सब लागै पीर ताही रघुवीर ही॥
(५।१६)

इस प्रकार का आत्म निवेदन उन्होंने कई स्थलों पर किया है। और क्यों न हो? राम के नाम का स्मरण करने से लोक और परलोक दोनों ही बन जाते हैं।

ङ—राम-नाम की महिमा

सिव जू की निद्धि, हनूमान हू की सिद्धि, विभी-
षन की समृद्धि वालमीकि नैं बखान्यौ है।
विधि कौं अधार, चारयौ वेदन कौं सार, जप
जज्ञ कौं सिंगार, सनकादि उर आन्यौ है॥
सुधा के समान, भोग-मुकति निधान, महा
मंगल निदान सेनापति पहिचान्यौ है।
कामना कौं कामधेनु, रसना, कौं बिसराम,
धरम कौं धाम राम-नाम जग जान्यौ है॥
(४।७५)

चाहत है धन जौ तू, सेंउ सिया-रमन कौं,
जातैं विभीषन पायौ राज अविचल है।
चाहै जौ अरोग, तौ सुमिरि एक ताही, जिन
मर्यौ फेरि ज्यायौ साखा-मृगन कौं दल है॥
चाहै जौ मुकति, जो है पति रघुपति, जिन,
कोसल नगर कीनौ मुकत सकल है।

सेनापति ऐसे राजा राम कौं बिसारि जौ पै
और कौं भजन कीजै, सो धौं कौन फल है ॥
(५।६)

यही कारण है कि सेनापति ऐसे राम के पैरों में जाकर गिर पड़े हैं—

सेनापति प्रभु पैंड़े परे ही जौ तारत हो,
तौब हम तारिबे कौं तेरे पैंड़े परे हैं।
(५।८)

ऐसे राम की शरण में पहुंच कर वे अभय हो गए हैं। वे उस स्थिति पर पहुँच गए हैं, वे भक्ति की उस उच्च भूमिका को प्राप्त कर चुके हैं, जहाँ पहुंच कर मनुष्य का हृदय पूर्णतया शान्त हो जाता है और सांसारिक यातनाएँ उसके लिए कोई मूल्य नहीं रखती हैं। भगवान राम के साथ तदाकार हो जाने का अनुभव प्राप्त करके वे 'कलि-काल' को चुनौती देते हैं कि तू मेरा अब कर ही क्या सकता है ? और हो भी क्यों न ? वे 'बड़ी सरकार' के नौकर जो हैं ? राम और सीता उन्हें भली प्रकार जानते हैं तथा लक्ष्मण का उन पर विशेष अनुराग है। यथा—

मोहिं महाराज आप नीके पहिचानैं, रानी
जानकीयौ जानैं, हेतु लछन कुमार को।
बिभीषन, हनूमान, तजि अभिमान मेरौ,
करैं सनमान जानि बड़ी सरकार को ॥
ए रे कलिकाल ! मोहिं कालौ न निदरि सकै,
तू तौ मति मूढ़ अति कायर गँवार को ?
सेनापति निरधार, पाइपोस-बरदार,
हौं तो राजा रामचन्द्र जू के दरबार को !
(५।२२)

निष्कामता, भक्ति की सबसे बड़ी शर्त—

भक्ति का सबसे बड़ा फल भक्ति ही है। भक्ति के बदले में मुक्ति अथवा और कोई वस्तु मिलेगी, इस भाव को लेकर भक्ति हो ही नहीं सकती है। अपना सौन्दर्य, शक्ति और शील के सागर के तट पर खड़े होकर लहरों का आनन्द लेना ही भक्ति का सबसे बड़ा फल एवं आनन्द है। गोस्वामी तुलसीदास ने भक्ति की यह निष्कामता बड़े ही सुन्दर ढंग से भक्ति की है—

"जो जगदीश तौ अति भलौ जो महीस बड़ भाग।
तुलसी चाहत जनम भरि, राम-चरन अनुराग॥"

सेनापति भी इसी कोटि के राम-भक्त हैं। उनकी दृष्टि में भक्ति साधन मात्र नहीं, अपितु साध्य है। भक्ति का उद्देश्य भक्ति ही है। ज्ञानी तक भक्ति-रस में मग्न रहते हैं। सेनापति की भक्ति पराभक्ति है। यथा—

भए हैं भगत भगवंत के भजन-रस,
ह्वै रहे विवेकी, जग जान्यौ जिन सपनौ।
सेवा ही के बल, सेवा आपनी कराई, पुनि
पायौ मनोरथ, सब काहू अप-अपनौ॥
यह अद्भुत, सेनापति है भजन कोई,
कह्यौ न बनत तन-मन कौ अरपनौ।
जैसौ हनूमान जान्यौ भजन कौ रस, जिन
राम के भजन ही लौं जीवौ माँग्यौ अपनौ॥
(४।६६)

'राम रसायन' के निम्नलिखित छन्द में कतिपय आलोचक उनके गर्विपठ स्वभाव की झलक देखते हैं। उनके मतानुसार इसमें दैन्य भावना का अभाव पाया जाता है, अतः यह कवित्त भक्ति-भावना के प्रतिकूल पड़ता है—

तुम करतार जन रच्छा के करन हार,
पुजवन हार मनोरथ चित चाहे के।

यह जिय जानि सेनापति है सरन आयौ,
हूजियै सरन महापाप-ताप छाहे के,
जो कौहू कहौं कि तेरे करम न तैसे, हम
गाहक हैं सुकृति भगति रस लाहे के।
आपने करम करि हौं ही, निवहौंगौ, तौव
हौं ही करतार, करतार तुम काहे के ?
(५।२६)

हमारे विचार से बात एक दम उल्टी है हममें भगवान की उपेक्षा नहीं, अपितु उनके प्रति अत्यधिक अनुराग ही व्यक्त हुआ है। बाहु-पीड़ा को दूर कराने के लिए गोस्वामी तुलसीदास ने राम की सौंह, खाई, जानकी की आनि को चुनौती दी तथा हनुमान की दुहाई दी' तथा भक्त प्रवर सूरदास ने अपने उद्धार के लिए भगवान् को खुलकर ललकारा था—

'आज हौं एक एक करि हरि हौं।
कै हम ही कै तुम ही माधव अपनि ॥
भरोसै लरिहौं''

सेनापति के उपर्युक्त कथन को हम दृष्टिकोण से देखने पर हमारे विचार से उनके भक्त होने में कोई सन्देह नहीं रह जाता है।

सारांश यह कि सेनापति भगवान् के जिस रूप को लेकर चले हैं उनके हृदय में सच्चा अनुराग था और वे उनकी अभिव्यक्ति करने में पूर्णतया सफल हुए हैं। उनकी उक्तियों में भक्ति-भावना की तल्लीनता है और अनुभूतियों की सचाई है। सेनापति पक्के वैष्णव थे, और उनकी कविता में एक सच्चे वैष्णव के हृदय की पुकार है।

तब प्रश्न उठता है कि सेनापति को भक्त-कवियों की श्रेणी में रखा जाए अथवा शृंगारी कवियों की श्रेणी में, उनकी रचना भक्ति साहित्य के अन्तर्गत आएँगी अथवा शृंगार परक साहित्य की कोटि में ? इस प्रश्न का केवल यही उत्तर हो सकता है कि दोनों ही में

उनकी प्रारम्भिक रचनाओं पर 'रीतिकालीन प्रवृत्तियों' की स्पष्ट छाप है और उनकी शृंगार परक रचनाओं में उनका शृंगारी हृदय झांक रहा है। उनकी पीछे की रचनाएँ भक्ति परक हैं और उनमें सेनापति का भक्त हृदय मुखरित हो उठा है। दोनों प्रकार की रचनाओं पर एक साथ विचार करने से सेनापति के प्रति न्याय नहीं हो सकता है। हाँ, इतना अवश्य है कि काल-विभाजन की दृष्टि से सेनापति शृंगारी कवियों की श्रेणी में ठहरते हैं।

'कोई' एक गाइन अलापत ह्वै साथी ताके,
लागे सुर दैव, सेनापति सुख दाइके।
(५।६३)

'कोई' महाजन ताकी सरिकौं न पूजै नभ,
जल थल व्यापि रहै अद्भुत गति कौं।
एक एक पुर 'पीछे' अगनित कोठा तहाँ।
(१।६६)

(अ) खड़ी बोली के क्रियापद कई स्थानों पर प्रयुक्त हुए हैं—

'आए' अगहन, हिम-पवन 'चलन लागे'
(३।४३)

तातैं सूर कातर समान से 'लगत हैं'।

(आ) कालवाची क्रियाविशेष 'पीछे' का भी कई स्थानों पर प्रयोग किया गया है—

'पीछे' डारि अधमन हम दीनौ दूनौ मन
तुम्हें तुम नाथ इत पाउ न धरत हौ।

'पीछे' रूप खड़ी बोली का है। 'पाछें इसका ब्रजभाषा का रूप है। इसी प्रकार खड़ी बोली के अनिश्चयवाचक सर्वनाम 'कोई' तथा 'कोऊ' व्यवहृत हुए हैं। उच्चारण की दृष्टि में खड़ी बोली का प्रभाव काफी व्यापक रूप में दिखाई देता है।

घ—संस्कृत तत्सम शब्द—

सेनापति ने यथा स्थान संस्कृत के तत्सम रूपों का भी सफलता पूर्वक प्रयोग किया है।

'देव-दुख-दंडन', 'भरत-सिर-मंडन', वे
वंदौ 'अघ-खंडन' खटाऊँ रघुराइ की।

इस प्रकार संस्कृत तत्सम शब्दों के प्रयोग तो बहुत ही व्यापक रूप में पाए जाते हैं। थोड़े से स्थलों पर पूरा छन्द ही संस्कृत के तत्सम रूपों से भर दिया है। संस्कृत-शब्दावली-प्रधान छप्पय का उदाहरण देखिए—

श्री वृंदावन-चंद सुभग धाराधर सुंदर।
दनुज-वंस-वन-दहन, वीर जदुवंस-पुरंदर॥
अति विलसति वनमाल, चारु सरसीरुह लोचन।
वल विदलित गजराज, विहित वसुदेव विमोचन॥
सेनापति कमला-हृदय, कालिय-फन-भूपन चरन।
करुनालय सेवौं सदा, गोवरधन गिरिवर-धरन॥
(४।२५)

ङ—विदेशी शब्द—

तत्कालीन राजनीतिक वातावरण के कारण अरवी फारसी के शब्दों का उन दिनों खूब चलन होगया था। सेनापति ने भी अनेक विदेशी अरवी और फारसी के शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है। इनके अधिकांश प्रयोग तद्भव रूपों में ही हुए हैं। जैसे—

(अ) 'अरवी' अरस (अर्श), लिवास, इतवार (एतवार) महल इत्यादि।

(आ) 'फ़ारसी' फानुस (फानूश), पाइपोस (पापोश), बरदार, दादनी, रोसन (रोशन), समादान (शमादान), कौल (क़ौल), मिहीं, आसना (आशना), गोसे (गोशा) ज्यारी (ज़ियारी), रुख (रुख) वाजी, जिरह (जिरह) गरद (गर्द) जरद (जर्द) इत्यादि। पहिली तरंग में इन शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। जैसे—

सोहति वहुत भाँति चीर सौं लपेटी सदा
जाकी मध्य दसा सोतौ मैन कौं निधान है।
तम कौं न राखै सेनापति अति 'रोसन' है,
जा विना न सूझै होत व्याकुल 'जहान' है।
परत पतंग मनमोहै तिन तरुन के
जोति है रदन होति खुरति निदान है।

(रामायण वर्णन) के अन्तर्गत आये हैं। (देखें छन्द संख्या १ १६, ३० तथा ४५ एक उदाहरण देखिए—

त्रिभुवन 'रच्छन' 'दच्छ' 'पच्छ' 'रच्छिय' 'कच्छप' वर।
फन फनिंद संभार, भार 'दिग्गज' तुव दुंभर।
धरनि 'धुक्कि' जनि परहि, मेरु डग मग जनि डुल्लहि।
सेनापति हिय 'फुल्लि' क्यौं न विरुदावलि बुल्लहि।
इहि विधि विरंचि 'सुक्कित' वदन, 'कुक्कि' धीर चहुँ चक्क दिय।
करपत पिनाक 'दसरत्थ' सुत राम 'हत्थ समरत्थ' लिय॥
(४।१५)

'ओज' और 'प्रसाद' दोनों गुणों का सुखद सम्मिश्रण भी देख लीजिए—

सिव जू की निद्धि हनूमानहू की सिद्धि, विभी-
षन की समृद्धि वालमीकि नैं बखान्यौ है।
विधि कौं अधार, चार्यौ वेदन कौं सार, जप
जज्ञ कौं सिंगार, सनकादि उर आन्यौ है।
सुधा के समान, भोग-मुकति निधान, महा
मंगल निदान सेनापति पहिचान्यौ है।
कामना कौं कामधेनु, रसना कौं विसराम
धरम कौं धाम राम-नाम जग जान्यौ है॥
(४।७५)

ज—शब्द-शक्तियाँ—

'कवित्त रत्नाकर' की भाषा में लक्षण और व्यंजना का अभाव ही मानना चाहिए। उसकी भाषा अभिधा प्रधान है। श्लिष्ट पदों के दो अर्थ अवश्य होते हैं, परन्तु वे रहते वाच्यार्थ ही हैं। अतः वहाँ भी अभिधा ही मानी जाएगी।

झ—नए गढ़े हुए शब्द

सेनापति की भाषा सुव्यवस्थित एवं परिमार्जित है। उन्होंने

शब्दों के रूपों को बहुत कम स्थलों पर ही विकृत किया है। छप्पयों में ओज गुण लाने के लिए उन्होंने शब्दों के द्वित्व रूप लिखे हैं, परन्तु इसके कारण भाषा विकृत न होकर अधिक प्रभावशाली ही बन गई है। हाँ, इतना अवश्य है कि एक-दो स्थलों पर सेनापति ने नए शब्द गढ़ कर कवि स्वातन्त्र्य का उपयोग किया है। जैसे—

(१) द्रौपदी सभा में आनि ठाढ़ी कीनी हठ करि,
कौरव कुपित कह्यौ काहू कौं न मानहीं।
लच्छक नरेस पैं न रच्छक उठत कोई,
परी है विपत्ति पति लागी 'पतता' नहीं॥
(५।४२)

(२) धुनि सुनि कोकिल की विरहिनि को किलकी,
केका के सुने तैं प्रान 'एकाके' रहत हैं।
(५।२५)

ञ –छन्द योजना

सेनापति ने प्रायः कवित्त ही लिखे हैं, जो प्रायः सर्वाङ्ग सुन्दर और पूर्णतया शुद्ध हैं। चौथी तरंग में वीर-रस का प्रदर्शन करने के लिए ५ छप्पय लिखे हैं। पाँचवी तरंग में चित्र काव्य के लिए दोहा छन्द का प्रयोग किया गया है। (छन्द संख्या ७३ से ८५ तक) की उमाशंकर शुक्ल के मतानुसार, "छंदोभंग दोष केवल एक ही कवित्त में है और वह भी प्रतिलिपिकारों के प्रमाद के कारण हो गया है। पर यति-गति सम्बन्धी दोष कई स्थलों पर है और उनका उत्तरदायित्व प्रतिलिपिकारों के सिर नहीं मढ़ा जा सकता है, जैसे–

(१) भूप सभा भूषन, दिपावौ परदूषन, कु–
बोल एक हू खन कहे न देह पाइ कै।
(१।४)

(२) कर न सन्देह रे, कही मैं चित देह रे, क–
हा है बीच देहरे ? कहा है बीच देत रे ?
(५।३१)

(३) गरजत घन, तरजत है मदन, लर—
जत तन मन नीर नैंननि वहति है।
(३।२५)

(४) सेनापति होत सीतलता (१) है सहस गुनी,
रजनी की झाँई वासर (१) में झमकति है।
(६।५०)

(५) सारंग धुनि सुनावै घन रस वरसावै,
मोर मन हरपावै अति अभिराम है।
(१।१२)

यहाँ पर १६, १५ की यति का क्रम तो ठीक है, किन्तु प्रथमाष्टक में ही दो विषम पदों ('सारंग' तथा 'सुनावै') के बीच में एक सम पद ('धुनि') रक्खा हुआ है; इसी से लय विगड़ गई है। यह प्रयोग निकृष्ट माना जाता है। गति की दृष्टि से उक्त पंक्ति इस प्रकार होनी चाहिए—

सारंग सुनावै धुनि रस वरसावै घन,
मन हरपावै मोर अति अभिराम है।
(पृष्ठ संख्या ५४, कवित्त रत्नाकर की भूमिका)

छन्दोभंग के स्थल इस प्रकार हैं—

कुविजा उर लगाई हमहूँ उर लगाई।
(१।६६)

और की कहा है सुमन के नेह चिकनाए।
(१।७१)

तेरे पगन की धूरि, मेरे प्रानन की मूरि।
(२।२०)

गोरी देह भीने वसन में फलकति मानौं।
(२।५७)

ओढ़ें सलिल पहैं न चैन उपजत है।
(३।१५)

बाग देखिबे कौं ऊपर (?) कौं उछरत हैं।
(३।८२)
मोर मन हरपावै अति प्रेम आम हैं।
(३।३४)
ताकौं सुर नर चलत न (?) दरसत है।
(४।५६)
ईस सीस लसै (बसै ?) विधि के कमंडल में।
(५।५८)
जी में दरद न छक्यौ सकल मदन तरु। (?)
(५।७१)

ञ—भाषा पर अधिकार

सेनापति का ब्रजभाषा पर पूर्ण अधिकार है। वे ब्रजभाषा लिखने में बहुत ही दक्ष थे। श्लेष वर्णन में उन्होंने साधारण से साधारण शब्दों को दो अर्थों में किस कुशलता के साथ प्रयोग किया है, वह देखते ही बनता है। इस सम्बन्ध में विवेचन तो अगले परिच्छेद 'अलंकार-विधान' के अन्तर्गत किया जाएगा, परन्तु यहां इतना बता देना आवश्यक है कि ब्रजभाषा की आत्मा से पूर्णतया परिचित होने के कारण ही सेनापति श्लिष्ट-काव्य-रचना में ऐसी अपूर्व सफलता प्राप्त कर सके हैं। 'चित्रालंकार' का विधान ही सेनापति के ब्रजभाषा—अधिकार का द्योतक है। उदाहरण देखिए—

मौन नेम, नामी नमै, मुनि मन मानै मैन।
मन-मानै नामी, मनौं मीन मानिनी नैन।
× × ×
दानी दिन दिन दादनी दाना दाना दीन।
दानी-दंदन दादि दै दाना दाना दीन॥
(५वीं तरंग छन्द संख्या ७६, ७८)

एक और सुन्दर उदाहरण देखिए—

अलमर्थमलंकर्तुं य व्युत्पत्यादिवर्त्मना ।
ज्ञेया जात्यादयः प्राज्ञैस्तेर्थालंकार संज्ञया ॥
(सरस्वती कण्ठाभरण)

अर्थात् 'लोकोत्तर शैली अथवा शब्द-रचना तथा अर्थ की विचित्रता का नाम अलंकार है। विभिन्न व्यक्तियों की उक्ति-वैचित्र्य का विभिन्न होना स्वाभाविक है। इसी आधार पर अलंकारों का विभाजन किया गया है।

आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अलंकार शास्त्रियों द्वारा दी गई अलंकार-सम्बन्धी विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर 'अलंकार' की इस प्रकार परिभाषा की है—

"भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी कभी सहायक होने वाली युक्ति ही अलंकार है।..................यह कथन की एक युक्ति अथवा वर्णन शैली मात्र है।

सेनापति के काव्यान्तर्गत हमें दोनों ही प्रकार के अलंकार मिलते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि उनके काव्य में शब्द-कौतुक दिखाने वाले 'शब्दालंकारों' का ही प्राधान्य है। पहिली तरंग 'श्लेष-वर्णन' इसका सबसे बड़ा प्रमाण है।

अ—शब्दालंकार

शब्दालंकार के मुख्य भेद ७ हैं यथा—

(१) अनुप्रास (छेक, वृत्य तथा लाट), (२) यमक, (३) पुनरुक्त वदाभास, (४) पुनरुक्ति प्रकाश, (५) वीप्सा, (६) श्लेष, और विक्रोक्ति !

अनुप्रास—

जब एक ही अक्षर अथवा कई व्यंजन वर्ण एक वाक्य में एक से अधिक बार आवें तब अनुप्रास होता है। (व्यञ्जनों के बार-बार

आने से ही अनुप्रास अलंकार होता है, यह आवश्यक नहीं कि उनमें एक ही स्वर का संयोग हो)। जैसे—

काम की कमान तेरी भृकुटी कुटिल आली,
  तातैं अति तीछन ए तीर से चलत हैं।
घूँघट की ओट, करि कै कसाई काम,
  मारे बिन काम, कामी केते ससकत हैं॥
तोरे तैं न टूटैं, ए निकासैं हू तैं निकसैं न,
  पैने निसि-बासर करेजे कसकत हैं।
सेनापति प्यारी तेरे तमके तरल तारे,
  तिरछे कटाछ गड़ि छाती मैं रहत हैं॥
(२।४)

बीर महाबली, धीर, धरम धुरंधर हैं,
  धरा मैं धरैया एक सारंग-धनुष कौं।
दानौ-दल मलन, मथन कलि-मलन कौं,
  दलन हैं देव द्विज दीनन के दुख कौं॥
जग अभिराम, लोक वेद जाकौं नाम, महा-
  राज-मनि राम, धाम सेनापति सुख कौं।
तेज-पुञ्ज रूरौ, चन्द सूरौं न समान जाके,
  पूरौ अवतार भयौ पूरन पुरुष कौं॥
(४।७)

सेनापति के प्रत्येक छन्द में हमें अनुप्रास की छटा देखने को मिलेगी! उनके चित्रालंकार के उदाहरण की आत्मा अनुप्रास ही है। यथा—

लोली लल्ला लल्लली लेली लीला लाल।
लालौ लीलौ लोल लै लै लै लीला लाल॥
× × ×
हरि हरि हारी हारि है हेरे रूरी हेरि।
हीरे हीरे हार है, रे हरि हीरै हेरि॥
(५।७३,७६)

यमक—

जहाँ शब्दों अथवा वाक्यांशों की प्रवृत्ति एक से अधिक बार होती है, लेकिन उनके अर्थ सर्वत्र भिन्न होते हैं, वहाँ 'यमक' अलंकार होता है। जहाँ एक ही रूप वाले दो या अधिक शब्द होते हैं वहाँ यमक में विशेष सुन्दरता रहती है और उसे सार्थक अथवा अभंग यमक कहते हैं। यथा—

विषै की कतार, तीक करि हरतार, कोऊ
लै कै 'करतार-करतार' गुन गाइ हौं।

यहाँ 'करतार' शब्द दो बार आने में 'यमक' अलंकार है। प्रथम 'करतार' का अर्थ है 'हाथों द्वारा वजाने वाला एक वाद्य-'करतालें' और द्वितीय 'करतार' का अर्थ है 'परमात्मा'। अतएव यह सार्थक अथवा अभंग यमक का उदाहरण हुआ है।

जहाँ ऐसे शब्दों की आवृत्ति होती है जिसमें से कुछ दूसरे शब्दों के अंश मात्र होते है, स्वयं पूरे शब्द नहीं होते वहाँ वे केवल श्रवण-सुखद कौतूहल उत्पन्न करते हैं। ऐसे स्थलों पर होने वाले 'यमक' को निरर्थक अथवा भंग यमक कहते हैं। निरर्थक अथवा भंग यमक के उदाहरण सेनापति की रचना में प्रचुरता से पाए जाते हैं। यथा-

कालिंदी की धार निरधार है अधर, गन
अलि के धरत जा निकाई के न लेस हैं।
जीते अहिराज, खेड़ि डारे हैं सिखंडि, घन
इन्द्रनील कीरति कराई नाहिं ए सहैं॥
(२।७)

प्रथम पंक्ति में 'धार' शब्द एक वार स्वतन्त्र रूप में आया है और दुबारा 'निरधार' के अंग रूप में। इसी प्रकार तृतीय पंक्ति में 'खंडि' शब्द एक वार स्वातन्त्र में आया है और एक वार 'सिखंडि' के अंश रूप में। दोनों स्थलों पर निरर्थक अथवा भंग यमक हुआ।

इसी प्रकार निम्नलिखित वाक्य में 'बनवारी' चितवनि तथा 'नवरत' शब्दांश तीन तीन वार प्रयुक्त हुए हैं—

'नूतन जोवनवारी' मिली ही जो 'वन वारी'
सेनापति 'वनवारी' मन में विचारिये।
तेरी 'चितवनि' ताके चुभी 'चित वनिता' के,
है 'उचित वनि' ताके मया के पधारिये।
सुधि ना 'निकेतन' की बाढ़ी 'उनके' 'तन' की
पीर मीन'केतन' की जाइ के निवारिये।
तो तजि 'अनवरत' वाके और 'न वरत',
कीजै लाल 'नव रत' बाल न बिसारिये॥
(२।८)

इस प्रकार भंग अथवा निरर्थक 'यमक' के उदाहरण 'कवित्त-रत्नाकर' में भरे पड़े हैं। इस सम्बन्ध में एक और उदाहरण देकर इस प्रकरण को समाप्त करते हैं—

कीजिये 'रजाइस' कौं हरि 'पुर' 'जाइस' कौं,
पौनो 'वीर' 'जाइस' कौं जा तन भरोसौ है।
काहू कौं 'न' 'डर' सेनापति हौं 'निडर' सदा,
जाके सिर ऊपर जु साँई राम तोसौ है।
कुलिस 'कठोरन' कौं देखौ नख 'कोरन' कौं,
लाए नैक 'पोरन' कौं मेरु चून कैसौ है।
चूर करौं 'सोरन' कौं कोटि कोट 'तोरन' कौं,
लंका गढ़ 'फोरन' कौं, 'कोरन' कौं मोसौ है॥

पहिली और दूसरी पंक्ति प्रथम वाक्य में 'रजाइस' शब्द तीन बार आया है। एक बार स्वतन्त्र 'रजाइस' के रूप में तथा दो बार शब्दों के अंश रूप में हरि 'पुर' 'जाइ' 'सकौं' 'वीर' 'जाइ' 'सकौं'।

द्वितीय वाक्य तृतीय पंक्ति में 'निडर' शब्द एक बार स्वतन्त्र रूप से आया है और एक बार अंश रूप में कौं 'न' 'डर' सेनापति।

पाँचवीं पंक्ति से लेकर आठवीं पंक्ति तक, 'ओरन' शब्द शब्दांश के रूप में ७ बार आया है 'कठोरन', नख 'कोरन', 'पोरन', 'सोरन', कोट 'तोरन', 'फोरन' तथा 'कोरन' इसी प्रकार यह भी

लौंग, तथा ग्रीष्म ऋतु बता कर अन्त में पुरुष के ही समान बता डाला है। (इसके लिए देखें पहिली तरंग के क्रमशः छन्द संख्या १४, १५, १६, १७, १८, १६, २०, २१, २२, २७, ३१, ३५, ३७, ८७ तथा ६४)।

देखिए नारी को पुरुष के समान बताने के लिये सेनापति ने किस कुशलता के साथ आद्योपान्त शब्द श्लेष का निर्वाह किया है—

छतियाँ सकुच वाकी को कहै समान तातैं,
न रन तैं मुरै सदा बीर है करन मैं।
सबै भांति पन करि बलमहिं पाग राखै
तेज की सुनै तैं आप मानै मान खन मैं।
अबला लै अंक भरै रति जो निदान करै,
ससि सन सोभावंत मानियै जोबन मैं।
जुगति विचारि सेनापति है बरनि कहै
बर नर नारि दोऊ एक ही बचन मैं॥
(१।६४)

श्लेष-चमत्कार नायिका तक ही सीमित नहीं रह गया है। निम्नलिखित छन्द में दाता और सूम को एक समान बताया गया है—

थोरौ कछू माँगे होत राखत न प्रान लगि,
रूखे मन मौन है रहत रिस भरि हैं।
आपने बसत देत जोरिबे की रति लेत,
बितरत जात धन धरा ही मैं धरि हैं।
जाँचत ही जाचक सौं प्रकट कहत तुम,
चिंता मत करौ हम सो असान करिहैं।
बानी है अरथ सेनापति की विचारि देखौ,
दाता अरु सूम दोऊ कीने सरबरि हैं।
(१।४१)

इसी प्रकार सभंग शब्द श्लेष द्वारा खोजा और सूम को समान

बता दिया है। (देखें छन्द संख्या ४२) निम्नलिखित छन्द में संभग श्लेष द्वारा शंकर और विष्णु का अभेद बताया है—

सदा नंदी जाकौं आसा कर है विराजमान,
नीकौ घनसार हू तैं बरन है तन कौं।
सैन सुख राखै सुधा द्युति जाके सेखर है,
जाके गौरी की रति जो मथन मदन कौं।
जो है सब भूतन कौं अंतर निवासी रमै,
धरै उर भोगी भेष धरत नगन कौं।
जानि बिन कहैं जानि सेनापति कहैं मानि,
बहुधा उमाधव कौं भेद छाँड़ि मन कौं।
(१३८)

श्लेष के सहारे सेनापति ने अपने भाषा पांडित्य का पूर्ण प्रदर्शन किया है—

बिरह हुतासन बरत उर ताके रहै,
बाल मही पर परी भूख न गहति है।
सेवती कुसुम हू तैं कोमल सकल अंग,
सून सेज रत काम केलि कौं करति है।
प्रानपति हेत गेह अंग न सुधारै जाके,
बरी है बरस तन मैं न सरसति है।
देखौ चतुराई सेनापति कबिताई की जु,
भोगिनी की सरि कौं बियोगिनी लहति है।
(१३९)

यहाँ भोगिनी और वियोगिनी को समान बता दिया है। निम्नलिखित छन्द में कलियुग के गोसाइयों को भिखारी ही बता डाला है—

गीतहि सुनावैं तिलकन झलकावैं भुज,
मूलन छपावैं द्वारका हू के पयान ही।

सेनापति कहै अचरज के वचन देखौ,
भावती की सेज अन भावती करत है।
(१।८६)

सेनापति के 'श्लेप-वर्णन' के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें ध्यान में रखने योग्य हैं—

शिलष्ट छन्द का अर्थ जानने के लिए सबसे पहिले यह जानने की आवश्यकता पड़ती है कि छन्द के अन्तर्गत किन दो बातों की ओर संकेत किया गया है प्रायः प्रत्येक शिलष्ट छन्द में कुछ ऐसे शब्द होते हैं जिन्हें हम छन्द की 'कुंजी' कह सकते हैं क्योंकि इन्हीं के द्वारा छन्द के दोनों पक्ष खुलते हैं। सेनापति के 'अधिकांश शिलष्ट छन्दों में अर्थालंकारों का मेल है। अर्थालंकारों में भी समता सूचक अलंकार ही प्रचुरता से पाए माते हैं। सेनापति ने इन समता सूचक अलंकारों को बहुधा अन्तिम चरण में रखा है और ये ही वास्तव में शिलष्ट कवियों की कुंजी हैं, क्योंकि इन्हीं के द्वारा कवित्त का अर्थ खुलता है अर्थात् उसके व्यक्त किए गए उपमेय तथा उपमान कवित्त के दोनों पक्षों को बतलाते हैं। जैसे—यह अन्तिम पंक्ति :—

"काम की सी पाग विधि कामिनी बनाई है।"
(१।१७)

ही इस कवित्त की कुंजी है। इसी प्रकार कवित्त संख्या ३८ की इस पंक्ति द्वारा ही कवित्त में वर्णित दोनों पक्षों का भेद खुलता है—

+ + + +

बहुधा उमाधव कौं भेद छांड़ि मन कौं।

इस पंक्ति के 'उमाधव' शब्द में यह तो स्पष्ट ही हो जाता है कि एक पक्षमें 'शिव' का वर्णन है। 'उमाधव' के उ को पृथक् कर 'बहुधाउ माधव' कर लेने से यह भी सहज ही विदित हो जाता है है कि दूसरे पक्ष में विष्णु का वर्णन है।

(ख)उपमेय और उपमान को पूरी तरह से साम्य न बैठ

सकने के कारण शब्दों को तोड़ मरोड़ कर किसी भाँति दोनों पक्षों में बैठाने का प्रयत्न किया गया है। ऐसा होने से कोई कोई कवित्त कुछ कुछ बेढंगे से हो गये हैं। उन दिनों ऐसे चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृति एक साधारण भी बात थी। उन दिनों कुछ ढंग ही ऐसा बन गया था कि जब तक काव्य में विचित्रता न हो, तब तक उसका कोई मूल्य ही न समझा जाता था। जो अपनी कविता में जितना चमत्कार ला सके, उसे अपनी लेखनी पर उतना ही अधिक गर्व होता था। सेनापति इसके अपवाद न थे। अपनी चमत्कार शक्ति पर उन्हें भी गर्व था—

सेनापति बैन मरजाद कविताई की जू,
हरि, रवि अरुन, तमीं कौं बरनत है।
(१।७४)

सेनापति कवि के कवित्त बिलसत अति,
मेरे जान बान हैं अचूक चाप धारी के।
(१।६)

ग—सेनापति के श्लेष के साथ समता सूचक अलंकारों का प्रयोग किया है और यथाशक्ति उपमेय और उपमान में साम्य स्थापित किया है। यही कारण है कि उनके शब्द-श्लेष जैसे कृत्रिम अलंकार में भी काफी सरसता आगई है।

सेनापति के 'श्लेष-वर्णन' को ध्यान से पढ़ने पर विदित होगा कि उन्होंने मस्तिष्क की करामात दिखाने के अतिरिक्त हृदय से भी काम लिया है। यथा—

मिलत ही जाके बढ़ि जात घर मैन चैन,
तन कौं बासन डारियत बगराइ कै।
आवत ही जाके नीकौ चंद न लगत प्यारी,
छाया लोचन की चाहियत सुखदाइ कै।
जाही के अरुन कर पाइ अब निज पति,
सुखित सरस जाके संगम कौं पाइ कै।

ग्रीषम की रितु बर वधू की समान करी,
सेनापति वचन की रचना बनाइ कै।
(१।८७)

घ—सेनापति के बहुत से कवितों में सभंग पद श्लेष तथा अभंग-पद श्लेप का सुन्दर सम्मिश्रण पाया जाता है। सभंग पद श्लेप और अभंग पद श्लेप पृथक् पृथक् थे, यह आवश्यक भी है। सेनापति के अभंग-पद श्लेपों के सम्बन्ध में एक बात भली प्रकार समझ लेनी चाहिए। केशवदास आदि हिन्दी साहित्य के अन्य अनेक कवियों ने ऐसे स्थलों पर संस्कृत के कठिन शब्दों का प्रयोग किया है। संस्कृत के कठिन शब्दों के समावेश के कारण कवित्त में दुरूहता आ जाती है तथा उसका प्रसाद गुण सर्वथा नष्ट हो जाता है। जटिल होने के फलस्वरूप कवितों की सरसता जाती रहती और वे हृदय ग्राही नहीं हो पाते हैं। परन्तु सेनापति ने ऐसा नहीं किया है। संस्कृत से परिचित होने पर भी सेनापति ने संस्कृत के क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग चाहा है और जन प्रचलित भाषा के शब्दों का ही प्रयोग किया है। अतः वे वर्णन नीरस नहीं हो पाए हैं। साधारण पढ़े लिखे व्यक्तियों को भी उनके समझने में विशेष कठिनाई नहीं होती है।

सभंग पद-श्लेषों की परिस्थिति तनिक भिन्न है। इनमें शब्दों को भंग करने के पश्चात् ही कवित्त के दोनों पक्षों के अर्थ खुलते हैं। इनके अर्थ समझने में कभी कभी कठिनाई होती है। परन्तु सेनापति ने यहाँ भी दूरदर्शिता तथा सहृदयता से काम लिया है। शब्दों में थोड़ा सा ही परिवर्तन कर देने से कवित्त के दोनों पक्षों का पता चल जाता है। जैसे बहुधा उमाधव कौं भेदछाँड़ि मन कौं' वाले कवित्त संख्या ३८ (पहिली तरंग) में। सेनापति ने कई कवित्तों में तो मामूली से शब्दों को लेकर अत्यन्त सरस शैली पर सभंग-पद श्लेष की रचना की है। जैसे 'मोतिन के देखिवे कौं जैसौ कछू रस है' वाला कवित्त (पहिली तरंग छन्द संख्या ६२)।

इस कवित्त में नायिका अपनी सखी से कहना तो यह चाहती है कि मुझे कृष्ण-दर्शन से जैसा आनन्द मिलता है ैसा और किसी बात से नहीं मिलता। गुरुजनों के संकोच के कारण स्पष्ट रूप से नायक की चर्चा करना उसके लिए सम्भव नहीं, इसलिए प्रकाश में तो वह मोतियों की प्रशंसा करती है, किन्तु श्लिष्ट वचनों द्वारा गुप्तरूप से अपने हृदय की बात भी प्रकट कर देती है। कृष्ण का नाम न लेकर 'तिनके' द्वारा केवल संकेत मात्र कर देने में गंभीरता, लज्जा तथा स्त्रीत्व की अनेक कोमल भावनाओं की व्यंजना होती है।

कुछ श्लिष्ट के कवित्तों के विभिन्न पक्षों को जानने के लिए को कुछ भी प्रयास नहीं करना पड़ता है। कवि स्वयं कह ; कि वह अमुक-अमुक बातों का वर्णन कर रही है जैसे—

राजा रामचन्द्र अरु पूज्यौं कौं उदित चन्द,
सेनापति बरनी दुहू की समताई है।
(१।११)

यह वर नारि सुवरन की मुहर सी।
(१।१४)

लौंग सी लुगाई करि बानी छल गाई ताही,
भाँति द्वै लगाई जिन भेद सौं बिचारी है।
(१।३७)

खोजा अरु सूम सम कीने करतार हैं।
(१।४२)

ग्रीषम की रितु हिम रितु दोऊ सेनापति
लीजियै समुझि एक भाँति सी बनाई है।
(१।५०)

सारांश यह है कि सभंग पद-श्लेष लिखने में सेनापति को अद्वितीय सफलता मिली है। उनके जैसा साफ़ श्लेष हिन्दी में खोजने पर भी नहीं मिलता है। कुछ कवित्तों में तो उन्होंने विरोधी

कई कवित्तों में शब्दों की पुनरावृत्ति करके कवित्त को द्व्यर्थक बनाया गया है—

कुविजा उर लगाई हम हूँ उर लगाई,(?)
पी रहे दुहू के तन मन वारि दीने हैं।
वे तौ एक रति जोग हम एक रति जोग
सूल करि उनके हमारे सूल कीने हैं॥
कूबरी यौं कल पैहैं हम इहाँ कल पैहैं,
सेनापति स्यामैं समुझै यौं परवीने हैं।
हम वे समान ऊधौ कहौ कौन कारन तैं
उन सुख मानैं हम दुख मानि लीने हैं।
(१।६६)

इस कवित्त में 'उर लगाई', एक रति जोग', 'सूल' तथा कल पैहैं' शब्दों की पुनरावृत्ति हुई है। अतएव यहाँ सभंग पद श्लेष न होकर सभंग-पद-यमक ही माना जायगा। श्लेपालंकार में एक शब्द एक ही वार प्रयुक्त होता है और उसके एक से अधिक अर्थ होते हैं। जहाँ कोई शब्द दो अर्थ नहीं भी देता हो, किन्तु उसे भंग करने के उपरान्त यदि दूसरा अर्थ निकल आता है, तो भी वहाँ श्लेप (अभंग पद) अलंकार मान लिया जाता है। परन्तु जहाँ किसी शब्द की पुनरावृत्ति के कारण दो भिन्न अर्थ निकलते हैं, वहाँ 'यमक' होता है। अन्य ऐसे छन्दों के विषय में भी यही बात समझ लेनी चाहिए।

सेनापति के शब्दालंकारों के विधान को देखकर हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि भाषा पर पूर्ण अधिकार होने के कारण सेनापति के शब्दालङ्कारों में कृत्रिमता नहीं आने पाई है।

आ—अर्थालंकार—

मोटे तौर पर अर्थालंकारों को चार श्रेणियों में विभाजित किया जाता है—(१) साम्यमूलक अर्थालंकार (२) विरोधमूलक अर्थालंकार (३) अन्य संसर्गमूलक अर्थालंकार तथा (४) उभयालंकार।

सेनापति प्रभु प्रान प्यारी तू अनूप नारी
तेरी उपमा की भांति जाति न विचारी है ॥
(१।८३)

अब हम सेनापति के द्वारा प्रयुक्त कतिपय अर्थालंकारों पर विचार करते हैं।

उत्प्रेक्षा

'ऋतु-वर्णन' के अन्तर्गत सेनापति ने सुन्दर उत्प्रेक्षाएँ लिखी हैं। जैसे—

कागद रंगीन में प्रवीन हैं बसंत लिखे
मानौं काम-चक्कवै के विक्रम कवित्त हैं।
(३।३)

प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण में प्रायः वस्तूत्प्रेक्षा से सहायता ली गई है, और इसमें कवि को अपूर्व सफलता मिली है। दो उदाहरण देखिये--

उदित विमल चन्द, चाँदनी छिटकि रही,
राम कैसौ जस अध ऊरध गगन है।
तिमिर हरन भयौ, सेत है बरन सब,
मानहु जगत छीर-सागर मगन है ॥
(३।४०)

शरद ऋतु की शुभ्र ज्योत्स्ना में परिपूर्ण संसार ऐसा लगता है मानों वह क्षीर-सागर में निमग्न है। इसी प्रकार जेठ मास की दोपहरी का भी चित्र देख लीजिए—

लागे हैं कपाट सेनापति रंग मन्दिर के,
परदा परे, न खटकत कहूँ पात है।
कोई न भनक, ह्वै कै चनक-मनक रही,
जेठ की दोपहरी कि मानौं अधरात है ॥
(३।१३)

जिस प्रकार प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण के लिये सेनापति ने वस्तूत्प्रेक्षा से सहायता ली है, उसी प्रकार ऋतुओं का उत्कर्ष व्यंजित करने के लिये उन्होंने फलोत्प्रेक्षा और हेतूत्प्रेक्षा की सहायता ली है। निम्नलिखित दोनों उदाहरणों में फलोत्प्रेक्षा का सुन्दर उपयोग हुआ है--

(१) मानौं सीत काल, सीत-लता के जमाइवे कौं,
राखे हैं विरंचि बीच धरा मैं धराइ कैं।
(३।१२)

(२) सेनापति माधव महीना मैं पलास तरु,
देखि देखि भाउ कविता के मन भाए हैं।
आधे अन-सुलगि, सुलगि रहे आधे, मानौं
विरही-दहन काम क्वैला परचाए हैं॥
(३।४)

निम्नलिखित वर्षा-कालीन-वर्णन में 'हेतूत्प्रेक्षा' द्वारा उत्कर्ष व्यंजित किया गया है।

चारि मास भरि स्याम निसा के भरम करि,
मेरे जान याही तैं रहत हरि सोइ कैं।
(३।३१)

पौराणिकों के मतानुसार चौमासे भर विष्णु भगवान शेष-शय्या पर सोया करते हैं। इसी बात को लेकर सेनापति के वर्षा का उत्कर्ष वर्णन करने के लिए यह बात कह डाली है कि हरिशयनी का वास्तविक कारण यह है कि चौमासे भर बादलों के घिरे रहने के कारण घोर अन्धकार रहता है और विष्णु को यह भ्रम रहता है कि अभी रात्रि कुछ शेष है, इसी से वे सोते रहते हैं।

इस प्रकार सेनापति ने अन्य अनेक स्थलों पर भी सुन्दर उत्प्रेक्षाओं का समावेश किया है। (देखें तीसरी तरंग छन्द संख्या ११, १६, २२, ३८, ७० तथा चौथी तरंग छन्द संख्या ४७)।

उपमा

'श्लेप-वर्णन' में अनेक सुन्दर उपमाएँ लिखी गई हैं। कहीं-कहीं तो ऐसा हो गया है कि 'श्लेप' गौण हो गया है और 'उपमा' ही सारे कवित्त में व्याप्त है। जैसे—

धनी के पधारै बार काँटे हू में पाउँ धरि
यह वर नारि सुवरन की मुहर सी।
(१।१४)

प्रीति सौं बाँधै बनाइ राखै छवि थिरकाइ,
कामकी सी पाग विधि कामिनी बनाई है।
(१।१७)

अन्य कई स्थलों पर भी सुन्दर उपमाओं का समावेश है—

पून्यौं सी तिहारी लाल, प्यारी मैं निहारी बाल,
तारे सम मोती के सिंगार रही साजि कै।
(२।४६)

अत्युक्ति और अतिशयोक्ति

सेनापति प्रधानतः चमत्कार प्रेमी हैं। भावों और व्यापारों को बढ़ा चढ़ा कर वर्णन किए बिना उन्हें संतोष नहीं होता है। इसी प्रवृत्ति से प्रभावित होकर वे 'अत्युक्ति' एवं 'अतिशयोक्ति' की ओर झुक जाते हैं। शिशिर ऋतु में दिन छोटे तथा रातें बड़ी होती हैं। इस बात का वर्णन करने के लिए उन्हें यह सूझती है कि दिन तो सपने जैसी वस्तु मात्र हैं, उन दिनों वास्तव में रातें ही रहती हैं—

सीत तैं सहस कर सहस-चरन ह्वै कै,
ऐसे जात भाजि तम आवत है घिरि कै।
जो लौं कोक कोकी कौं मिलत तौ लौं होति राति,
कोक अधबीच ही तैं आवत है फिरि कै।

तथा—

कलप सी राति, सो तौ सोए न सिराति क्योंहू,
सोइ सोइ जागे पै न प्रात पेखियत है।

सेनापति मेरे जान दिन हू तैं राति भई,
दिन मेरे जान सपने मैं देखियत है।
(३।५१, ५२)

इसी प्रकार 'अतिशयोक्ति' का चमत्कार भी देख लीजिए—

राजा राम के स्वरूप का वर्णन करते करते सेनापति भावपक्ष से एक तरह विमुख ही होगए—

पाँचौं सुरतरु कौं जौ एकै सुरतरु, एक,
देह जौ वसंत रति-कंत की वनाइयै।
बीते, होनहार, चंद पून्यौं के सकल जोरि,
चंद करि एकै जौ दृगन दिखराइयै।
दसौ लोकपालन कौं एकै लोकपाल, एक,
बारह दिनेस कौं दिनेस ठहराइयै।
सेनापति महाराजा राम कौं अनूप तव,
राज-तेज रूप नैंक बरनि बताइयै।

'गंगा-माहात्म्य-वर्णन' में 'सुरनदी' की जय बोलने के चमत्कार को बताने के लिए 'अक्रमातिशयोक्ति' का सहारा लिया है—

कोई एक गाइन अलापत हो साथी ताके,
लागे सुर दैन सेनापति सुख दाइकै।
तौही कही आप, सुन न दीजै प्रवीन, हौं अ-
लापिहौं अकेलौ, मित्त सुनौ चित्त चाइकै।
धोखे 'सुरनदी जै' के कहत, सुनत, भए,
तीन्यौं तीनि देव, तीनि लोकन के नाइकै।
गाइन गरुड़-केतु भयौ द्वै सखाऊ भए,
धाता महादेव, वैठे देव लोक जाइ कै।
(५।६३)

एक गवैया सुर भर रहा था। उसके दो साथी भी उसके साथ स्वर मिल कर गाने लगे। गायक महाशय ने उनसे कहना चाहा कि आप लोग 'सुर न भरिए', परन्तु सुर न भरिह की बजाय वे

धोखे से 'सुर न दी जै' (गंगा की जय) कह गए। बस फिर क्या था; गवैया और अंक दोनों मित्र क्रमशः विष्णु, ब्रह्मा तथा महादेव हो गए और देवलोक में जा विराजे। ऐसा है गंगा के नाम लेने का माहात्म्य।

रूपक

पाप पतवारि के कतल करिवे कौं गंगा,
पुन्य की असील तरवारि सी लसति है।

पाप पतवारि में रूपक है तथा तरवारि सी में उपमा है। निम्न लिखित छन्द में 'सांग' रूपक है—

वरन वरन तरु फूले उपवन वन,
सोई चतुरंग संग दल लहियत है।
वंदी जिमि वोलत विरद वीर कोकिल हैं,
गुंजत मधुप गान गुन गहियत है।
आवै आस-पास पुहुपन की सुवास सोई,
सोंधे के सुगंध माँझ सने रहियत है।
सोभा कौं समाज, सेनापति सुख-साज आज,
आवत वसंत रितुराज कहियत है।
(३।१)

निम्न लिखित सांग रूपक में 'श्लेष' का पुट दिया है। इस कारण उसका अर्थ तनिक जटिल हो गया है; परन्तु उसका रूपक अधिक रमणीय हो गया है। गंगा की तरंग तथा गुलेल के भिन्न अंगों में पाया जाने वाला सादृश्य और साधर्म्य अधिक स्पष्ट हो गया है—

लहुरी लहरि दूजी ताँति सी लसति, जाके
वीच परे भौंर फटिका से सुधरत हैं।
परे परवाह पानि ही में जे वसत सदा,
सेनापति जुगति अनूप वरनत हैं।

कोटि कलिकाल कलमष सब काक जिमि,
देखे उड़ि जात पात-पात ह्वै नसत हैं ॥
सोहत गुलेला से बलूला सुरसरि जू के,
लोल हैं कलोल ते गिलोल से लसत हैं ।
(५।६४)

इस कवित्त में 'दानि', 'कोटि' तथा 'कलमष' आदि शब्द श्लिष्ट हैं। सारांश यह है कि जिस प्रकार कोटि (धनुप-कोटि) रूपी काले (कलि) काल को देखते ही समस्त काले (कलमष अथवा कल्माष) कौए उड़ जाते हैं और गोली लग जाने से छिन्न-भिन्न हो जाते हैं उसी प्रकार गंगा की तरंग देखने पर कलिकाल के करोड़ों पातक विलीन हो जाते हैं और उसका अस्तित्व तक मिट जाता है। इस प्रकार इस रूप में साधर्म्य और सादृश्य दोनों ही का सुन्दर निर्वाह किया गया है।

'कवित्त-रत्नाकर' में एक अन्य स्थान पर 'अर्थ श्लेष' का भी प्रयोग हुआ है—

साधव के बिछुरे तैं पल न परति कल,
परी है तपति अति मानौं तन पाइयै ।
सौंह वृखभान की न रहै जो जरनि कछु,
छाया घनस्याम की जो पूरे पुन्न पाइयै ॥
(१।६३)

सन्देह

सादृश्य-सूचक काल्पनिक संदेह में ही सन्देहालङ्कार माना जाता है। उदाहरण देखिए—

सौंहैं देह पाइ किधौं चारि हैं उपाइ, किधौं
चतुरंग सम्पत्ति के अंग निरधार हैं।
किधौं ए पुरुष रूप चारि पुरुषारथ हैं,
किधौं वेद चारि धरे मूरति उदार हैं ॥

सब गुन आगर, उजागर, सरूप धीर,
सेनापति किधौं चारि सागर संसार हैं।
दीपति विसाल, किधौं चारि दिगपाल, किधौं
चारों महाराजा दशरथ के कुमार हैं ॥
(४।८)

पच्छन कों धरैं, किधौं सिखर सुमेरु के हैं,
बरसि सिलान, सत्रु जुद्धहिं करत हैं।
किधौं मारतण्ड के हैं मण्डल अडम्बर सौं,
अम्बर में दिव्य की छटा बरसत हैं ॥
नृपति कौं धरैं सेनापति हैं धनुरवेद,
तेजरूप धारी किधौं अग्नि अरत हैं।
हेम-रथ बैठ, महारथी हेम-बानन सौं,
गगन में दोऊ राम-लखन लरत हैं ॥

निम्नलिखित छन्द में 'उत्प्रेक्षा से पुष्ट सन्देहालङ्कार' है—

महा बलवन्त, हनुमन्त बीर अतंक ज्यौं,
जारी है निसंक लंक विक्रम सरसि कै।
उठी सत-जोजन तैं चौगुनी धरक, जरें,
जात सुर-लोक, पै न सीरे होत ससि कै ॥
सेनापति कछू ताहि बरनि कहत मानौं,
ऊपर तैं परे तेज-लोक हैं बरसि कै।
आगम-विचारि राम-बान कौं अगाऊ किधौं,
सागर तैं पर्यौ बड़वानल निकसि कै ॥
(४।३५)

भ्रान्तिमान

कभी कभी किसी वस्तु को देखकर उसमें अन्य किसी वस्तु से कुछ सादृश्य के कारण हम उसे अन्य वस्तु समझ बैठते हैं, पर वह वास्तव में अन्य वस्तु होती नहीं। ऐसी भूल को भ्रम कहते हैं जैसे

रस्सी में सर्प का भ्रम होना। इसी प्रकार जब उपमेय में उपमान का आभास हो तब भ्रम या भ्रान्तिमान अलंकार होता है। 'भ्रान्तिमान' में उपमान में उपमेय का आभास मिलता है, इससे उसे उपमेय समझ लिया जाता है। यथा—

सिसिर में ससि कौं सरूप पावै सविताऊ,
घाम हू में चाँदिनी की दुति दमकति है।
सेनापति होत सीतलता (१) है सहस गुनी,
रजनी की, झाँई वासर (१) में झमकति है।
चाहत चकोर, सूर ओर दृग-छोर करि,
चकवा की छाती तनि धरि धमकति है।
चंद के भरम होत मोद है कमोदिनी कौं,
ससि संक पंकजिनी फूलि न सकति है।

शिशिर ऋतु की शीतलता का वर्णन है। शीतलता के उपमान है चन्द्र और चन्द्रिका, तथा उपमेय हैं सूर्य और धूप। यहाँ पर सूर्य और धूप में चन्द्रमा और चाँदनी का भ्रम होने में 'भ्रान्तिमान' अलंकार है।

अनन्वय

चन्द दुति मन्द कीने, नलिन मलिन तैं ही,
तो तैं देव अंगनाऊ रंभादिक तर हैं।
तोसी एक तुही, अरु तोसे तरे प्रतिबिम्ब,
सेनापति ऐसे सब कवि कहत रहैं।
समुझैं न वेई, मेरे जान यौं कहत जेई,
प्रतिबिम्ब वेह, तेरे भेप निरन्तर हैं॥
यातें मैं विचारी प्यारी परे दरपन बीच,
तेरे मैं प्रतिबिम्बौं पै न तेरी पटतर हैं।
(२।५३)

व्यतिरेक

मंद मुसकान कोटि चंद तैं अमंद राजै,
दीपति दिनेस कोटि हू तैं अधिकाइयै।
कोटि पंचबान हू तैं महा बलवान, कोटि
कामधेनु हू तैं महादानि जग जानियै।
और ठौर झूँठौ बरनन एतौ सेनापति,
सीतापति पाइ तैं अधिक गुन-खानियै।
ऐसी अति उकति जुगति मो बतावौ जासौं,
राजा राम तीनि लोक नाइक बखानियै॥
(४।४)

प्रतीप

तेरे नीकी बसुधा है वाके तौ न बसुधा है,
तू तौ छत्रपति सो न छत्रपति मानियै।
सूर सभा तेरी जोति होति है सहस गुनी
एक सूर आगे चंद जोति पै न जानियै।
सेनापति सदा बढ़ी साहिबी अचल तेरी
निस-दिन चंद चल जगत बखानियै।
महाराज रामचंद चंद तैं सरस तू है
तेरी समता कौं चंद कैसे मन आनियै॥
(१।७६)

'नखशिख-वर्णन' में कई स्थलों पर 'प्रतीप' का सहारा लिया गया है।

व्याज-स्तुति

भक्तगण ऐसे तो भगवान् का गुण-गान किया करते ही हैं किन्तु कभी-कभी वे प्रत्यक्ष में निन्दा करते हुए भी उनकी स्तुति

रस्सी में सर्प का भ्रम होना। इसी प्रकार जब उपमेय में उपमान का आभास हो तब भ्रम या भ्रान्तिमान अलंकार होता है। 'भ्रान्तिमान' में उपमान में उपमेय का आभास मिलता है, इससे उसे उपमेय समझ लिया जाता है। यथा—

सिसिर में ससि कौं सरूप पावै सविताऊ,
घाम हू में चाँदिनी की दुति दमकति है।
सेनापति होत सीतलता (?) है सहस गुनी,
रजनी की, झाँई वासर (?) में झमकति है।
चाहत चकोर, सूर ओर दृग-छोर करि,
चकवा की छाती तजि धरि धमकति है।
चंद के भरम होत मोद है कमोदिनी कौं,
ससि संक पंकजिनी फूलि न सकति है।

शिशिर ऋतु की शीतलता का वर्णन है। शीतलता के उपमान हैं चन्द्र और चन्द्रिका, तथा उपमेय हैं सूर्य और धूप। यहाँ पर सूर्य और धूप में चन्द्रमा और चाँदनी का भ्रम होने में 'भ्रान्तिमान' अलंकार है।

अनन्वय

चन्द दुति मन्द कीने, नलिन मलिन तैं ही,
तो तैं देव अंगनाऊ रंभादिक तर हैं।
तोसी एक तुही, अरु तोसे तेरे प्रतिबिम्ब,
सेनापति ऐसे सब कवि कहत रहैं।
समुझैं न वेई, मेरे जान यौं कहत जेई,
प्रतिबिम्ब वेह, तेरे भेय निरन्तर हैं॥
यातैं मैं विचारी प्यारी परे दरपन बीच,
तेरे मैं प्रतिबिम्बौं पै न तेरी पटतर हैं।
(२।५३)

व्यतिरेक

मंद मुसकान कोटि चंद तैं अमंद राजै,
दीपति दिनेस कोटि हू तैं अधिकाइयै।
कोटि पंचवान हू तैं महा बलवान, कोटि
कामधेनु हू तैं महादानि जग जानियै।
और ठौर झूँठौ बरनन एतौ सेनापति,
सीतापति पाइ तैं अधिक गुन-खानियै।
ऐसी अति उकति जुगति मो बतावौ जासौं,
राजा राम तीनि लोक नाइक बखानियै॥
(४।४)

प्रतीप

तेरे नीकी बसुधा है वाके तौ न बसुधा है,
तू तौ छत्रपति सो न छत्रपति मानियै।
सूर सभा तेरी जोति होति है सहस गुनी
एक सूर आगे चंद जोति पै न जानियै।
सेनापति सदा बड़ी साहिबी अचल तेरी
निस-दिन चंद चल जगत बखानियै।
महाराज रामचंद चंद तैं सरस तू है
तेरी समता कौं चंद कैसे मन आनियै॥
(१।७६)

'नखशिख-वर्णन' में कई स्थलों पर 'प्रतीप' का सहारा लिया गया है।

व्याज-स्तुति

भक्तगण ऐसे तो भगवान् का गुण-गान किया करते ही हैं किन्तु कभी-कभी वे प्रत्यक्ष में निन्दा करते हुए भी उनकी स्तुति

करते हैं। सेनापति कहते हैं कि मैं नहीं कह सकता कि जिन भगवान का यह हाल है, उनका सेवक मैं न मालुम कितना अधम होऊँगा। दैन्य प्रदर्शन करने के मिस भगवान की 'व्याज-स्तुति' की गई है।

धीवर कौं सखा है, सनेही बनचरन कौं
गीध हू कौं बंधु सबरी कौं मिहमान है।
पंडव कौं दूत, सारथी है अरजुन हू कौं,
छाती विप्र-लात कौं धरैया तजि मान है।
व्याध अपराध-हारी, स्वान समाधान कारी,
करै छरीदारी, बलि हू कौं दरबार है।
ऐसौ अवगुनी? ताके सेइबे कौं तरसत,
जानियै न कौंन सेनापति के समान है।
(५।१६)

सेनापति के अलंकार-विधान के सम्बन्ध में हमारे ये निष्कर्ष ठहरते हैं—

(१) सेनापति कविता में चमत्कार लाने के लिए अलंकारों का समावेश अनिवार्य समझते थे।

(२) सेनापति का अर्थालंकारों की अपेक्षा शब्दालंकारों की ओर विशेष ध्यान था।

(३) सेनापति ने उन्हीं अर्थालंकारों का प्रयोग किया है, जो अधिक प्रचलित थे।

(४) रूपकों को श्लिष्ट कर देने का सेनापति में विशेष आग्रह पाया जाता है। चिरंग रूपकों में तो उन्होंने सहज ही श्लेष का सम्मिश्रण कर दिया है। यथा—

प्रबल प्रताप दीप सात हू तपत जाकौं,
तीनि लोक तिमिर के दलन दलत है।

देखत अनूप सेनापति राम रूप रवि,
सबै अभिलाष जाहि देखत दलत है।
ताही उर धारौं दुरजन कौं विसारौं नीच,
थोरौं धन पाइ महा तुच्छ उछलत है।
सब विधि पूरौं सुरवर सभा रूरौं यह,
दिनकर सूरौं उतराइ न चलत है।
(१।७५)

१०—नायिका-भेद-कथन

'शृंगार-वर्णन' में आलम्बन विभाव के अन्तर्गत सेनापति ने अपनी रुचि के अनुसार नायिकाओं के कुछ भेदों का कथन किया है। यथा—

मालती की माल तेरे तन कौं परस पाइ,
और मालातीन हूँ तैं अधिक बसाति है।
सौने तैं सरूप, तेरे तन कौं अनूप रूप,
जातरूप-भूपन तैं और न सुहाति है।
सेनापति स्याम तेरी सहज निकाई रीझे,
काहे को सिंगार कै कै बितवति राति है।
प्यारी और भूपन कौं भूपन है तन तेरौ,
तेरियै सुवास और वास वासी जाति है।
(२।२८)

उपर्युक्त कवित्त में सर्वगुणों में सम्पन्न एवं शोभा, दीप्ति, कान्ति माधुर्य, औदार्य आदि अयत्नजु अलंकारों से युक्त नायिका का वर्णन किया है। आचार्य कवियों ने नायिका का यही लक्षण बताया है कि—

रस सिंगार कौ भाव उर उपजत जाहि निहारि।
ताही कौं कवि नायिका बरनत विविध विचारि॥
'पद्माकर'

ऐसे गुणों एवं लक्षणों से युक्त एक और नायिका देख लीजिए—

लोचन बिसाल, लाल अधर प्रवाल हू तैं,
चंद तैं अधिक मंद हास की निकाई है।

मन लै चलति, रति करति सुहासपन,
बोलति मधुर मानौ सरस सुधाई है।
सेनापति स्याम तुम नीके रस बस भए,
जानति हौं तुम्हैं उन मोहिनी सी लाई है।
काम की रसाल, काढ़ै विरह के उर साल,
ऐसी नव वाल लाल पूरे पुन्य पाई है।
(२।२६)

वयः सन्धि की अवस्था वाली नायिका का स्वरूप देखिए—

लोचन जुगल थोरे थोरे से चपल सोई,
सोभा मंद पवन चलत जलजात की।
पीत हैं कपोल, तहाँ आई अरुनाई नई,
ताही छवि करि ससि आभा पात पात की।
सेनापति काम भूप सोवत सो जागत है,
उज्ज्वल विमल दुति पैयै गात गात की।
सैसव-निसा अथौत जोबन-दिन उदौत,
बीच वाल-वधू झाँईं पाई परभात की।
(२।२६)

अवस्था के विचार से 'मुग्धा' नायिका है। अभी वह अंकुरित यौवना ही है। लज्जाशीला किशोरी के शरीर में नवयौवन का संचार हो रहा है। धूप छांहवाली यह अवस्था अनोखी ही होती है। 'सैसव जोवन संगम भेल' कह कर विद्यापति ने वयःसन्धि की इस दशा का वर्णन किया है।

निम्नलिखित छन्द में 'ज्ञातयौवना' मुग्धा नायिका का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है—

काम-केलि-कथा कनाटेरी दै सुनन लागी,
जऊ अनुरागी वाल केलि के रसन है।
तरुन के नैना पहिचानि, जिय मैं की जानि,
लागी दिन द्वैक ही तैं भौंहनि हसन है।

चंपे-के से फूल, भुज-मूल की झलक लागी,
सेनापति स्याम जू के मन मैं वसन है।
सूधी चितवन तिरछौंही सी लगन लागी,
विन ही कुचन लागी कंचुकी लसन है।
(२।५०)

नायिका पर अंकुरित यौवन का प्रभाव परिलक्षित होने लगा है। काम भूप सोते से जाग गए हैं और वह जीवन में एक नवीन अनुभव करने लगी है। वह चंचला हो गई है और काम चर्चा में उसे आनन्द आने लगा है।

भौन सुधराए सुख साधन धराए, चारयौ,
जाम यौं वराए सखी आजरति राति है (
आयो चढ़ि चंद, पै न आयौ वसुदेव-नंद,
छाती न धिसति आधी राति नियराति है।
सेनापति प्रीतम की प्रीति की उतीति मोहिं,
पूँछति हौं तोहि मोसी और को सुहाति है।
किन विरमाए, केलि-कला कै रमाए, लाल
अजहूँ न आए धीर कैसे धरि जाति है।
(२।५१)

यह स्वकीया 'उत्कंठिता' नायिका का वर्णन है।

उन दिनों स्वकीया नायिका की अपेक्षा परकीया नायिका के वर्णन अधिक लिखे जाते थे। यह तो आगे वताया जाएगा कि सेनापति 'स्वकीया' के प्रेम को कितना श्रेष्ठ समझते थे, यहाँ तो हमें यह वताना है कि सेनापति ने भी तत्कालीन परिपाटी पर चल कर परकीया नायिकाओं के पूरे उत्साह के साथ वर्णन किया है। यथा—

झूँठे काज कौं वनाइ, मिस ही सौं घर आइ,
सेनापति स्याम वतियान उघरत हौ।

आइ कै समीप, करि साहस समान ही सौं,
हँसी हँसी बातन ही बाँह कौं धरत हौ।
मैं तौ सब रावरे की बात मन मैं की पाई,
जाकौं परपंच एतौ हम सौं करत हौ।
कहाँ एती चतुराई, पढ़ी आप जदुराई,
आँगुरी पकरि पहुँचा कौं पकरत हौ।
(२।३०)

यहाँ 'वचन विदग्धा' परकीया नायिका वर्णन है। परकीया नायिका के अन्तर्गत 'खण्डिता' के वर्णन की विशेष प्रथा थी—

आए परभात, सकुचात, अलसात गात,
जावक तिलक लाल भाल पर लेखियै।
सेनापति मानिनी के रहे रति मानि नीके,
ताही तैं अधर रेख अंजन की रेखियै।
सुख रस भीने प्रान प्यारी बस कीने पिय,
चिन्ह ये नवीने परतच्छ अच्छ पेखियै।
होत कहा नींदे ऐतौ रैनि के उनींदे अति,
आरसीलै नैना आरसी लै क्यों न देखियै।
(२।३१)

उपालम्भ की उग्रता के विचार से नायिका धीराधीरा कही जाएगी।

प्रचलित प्रथा के अनुसार सेनापति ने दन्त क्षत, नखक्षत, महावर आदि का भी उत्साह पूर्वक वर्णन किया है—

नीकै रमनी के उर लागे नख-छत, अरु,
घूमत नयन, सब रजनि जगाए हौ।
आए परभातु बार बार हौ जँभात सेना,
पति अलसात, तऊ मेरे मन भाए हौ।
कहा है सकुच मेरी, हौं तौ हौं तिहारी चेरी,
मैं तौ तुम निधनी कौं धन करि पाए हौ।

आवत तौ आए सुधि ताकी है कि नाहीं जाके,
पाइ के महाउर की खौरि करि आए हौ।

(२।३२)

पति लाख अपराध करे परन्तु भारतीय कुल-वधू अपने पति का आदर करके संतोष का अनुभव करती रही है। सेनापति ने 'खंडिता' नायिका के निम्नलिखित वर्णन में इसी बात को व्यंजित किया है:—

जावकौ लिलार ताके पावकौ अधर, नैन
अंजन है आज मनरंजन लसत हौ।
वारी हौं तिहारी छवि ऊपर बिहारी, मेरे
तारन कौं प्यारे सुधा-रस बरसत हौ॥
छूजियै न पाइ हौं तौ सेवक हौं सेनापति
प्रानपति मेरे तुम जीतैं सरसत हौ।
मान बिन सारौ, सरवस वारि डारौं, लाल
वारौं ए चरन जे चरन परसत हौ॥

(२।३३)

अगले छन्द संख्या ३४ में भी इसी प्रकार से 'स्वकीया' खण्डिता नायिका के शील की व्यंजना की गई है। निम्नलिखित छन्द में खण्डिता नायिका का पूरी कवायद के साथ वर्णन किया गया है—

बिन ही जिरह, हथियार बिन ताके अब,
भूलि मति जाहु सेनापति समझाए हौ।
करि डारी छाती घोर घाइन सौं राती-राती,
मोहि धौं बतावौ कौन भाँति छूटि आए हौ॥
पौढ़ौ बलि सेज, करौं औषद की रेज वेगि,
मैं तुम जियत पुरविले पुन्य पाए हौ।
कीने कौन हाल! वह बाघिनि है बाल! ताहि
कोसति हौं लाल, जिन फारि-फारि खाए हौ॥

(२।३५)

पराई स्त्री को बाघिनि कह कर अपने पति को पूर्णतया निर्दोष एवं अनभिज्ञ बताकर मर्म भेदी व्यंग्य बाण छोड़े गए हैं। वक्षस्थल पर लाल-लाल घाव कह कर दन्त-क्षत एवं नख-क्षत की ओर संकेत किया है। काम-केलि सूचक चिन्हों को देख कर नायिका ने व्यंग्य रोष ही प्रकट किया है, पति के प्रति आदर-भाव का त्याग नहीं किया है। अतः यह मध्या अधीरा 'खण्डिता नायिका का सुन्दर उदाहरण है। 'फारि फारि खाए' हौ। कहने से कुछ रस दोष अवश्य माना जाएगा।

सेनापति ने यद्यपि 'परकीया' नायिका से सम्बन्धित अधिक वर्णन लिखे हैं, तथापि वे 'स्वकीया' नायिका की महत्ता को स्वीकार करते थे। प्रौढ़ स्वाधीन पति का' नायिका के निम्नलिखित वर्णन में 'स्वकीया' नायिका की सुकुमार भावनाओं का चित्रण देखिए—

फूलन सौं बाल की बनाइ गुही बेनी लाल,
भाल दीनी बैंदी मृगमद की असित है।
अंग अंग भूषन बनाइ ब्रज-भूषन जू,
बीरी निज कर कै खवाई अति हित है॥
ह्वै कै रस बस दीबे कौं महाउर के,
सेनापति स्याम गह्यौ चरन ललित है।
चूमि हाथ नाथ के लगाइ रही आँखिन सौं
कही प्रानपति यह अति अनुचित है॥

सेनापति को स्वकीया के चित्रण में अपूर्व सफलता मिली है—

जौतैं प्रान प्यारे परदेश कौं पधारे तोतैं,
बिरह तैं भई ऐसी ता तिय की गति है।
करि कर ऊपर कपोलहिं कमल-नैंनी,
सेनापति अनमनी बैठियै रहति है॥
कागहिं उड़ावै, कौहू कौहू करै सगुनौती,
कौहू बैठि अवधि के बाँसर गनति है।

पढ़ि पढ़ि पाती, कौहू फेरि कै पढ़ति, कौहू
प्रीतम कौ चित्र मैं सरूप निरखति है ।।
(२।६१)

यहाँ 'प्रोषितपति का स्वकीया' नायिका की वियोगावस्था का सुन्दर वर्णन किया गया है। 'प्रोषितपतिका' का पति आने वाला है। उसके बाएँ अंग फड़क कर इस शुभ समाचार की सूचना दे रहे हैं। देखिए इस 'आँगमिष्यपतिका' नायिका का चित्रण—

कौनैं बिरमाए, कित छाए, अजहूँ न आए,
कैसे सुधि पाऊँ प्यारे मदन गुपाल की।
लोचन जुगल मेरे ता दिन सफल ह्वै हैं,
जा दिन बदन-छवि देखौं नन्द-लाल की ।।
सेनापति जीवन-अधार-गिरिधर बिन,
और कौन हरै बलि बिथा मो बिहाल की।
इतनी कहत, आँसू बहत, फरकि उठी,
लहर लहर हग बाईं ब्रज-बाल की ।।
(२।६८)

'रामायण-वर्णन' के अन्तर्गत सेनापति ने राम के एक नारी-व्रत पर बड़ा बल दिया है। यथा—

देखि चरनारबिंद बंदन कर्‌यौ बनाइ,
उर कौं बिलोकि, बिधि कीनी आलिंगन की।
चैन के परम ऐन, राखे करि नैंन नैंक,
निरखि निकाई इन्दु सुन्दर बदन की।
मानौं एक पतिनी के ब्रत की, पतिब्रत की,
सेनापति सीमा तन मन अरपन की।
सिय रघुराई जू कौं माल पहिराई, लौन
राई करि वारी सुन्दराई त्रिभुवन की।
(४।१८)

तथा—

मोहिनी कौं सिव, सारदा हू कौं विरंचि, पुर
हूत हू अहिल्या कौं विलोकि न भलाई की।
भूली है समाधि सिद्धि रिद्धि भुलई है सुधि,
पारवती, सावित्री, सची सरूपताई की।
सेनापति राम एक नारी व्रत धारी भयौ,
सो तौ न बड़ाई रघुबीर धीरताई की।
जा पर गँवारि देव नारि वारि डारी, सो तौ
महिमा अपार सिय रानी की निकाई की।
(४।२३)

पातिव्रत धर्म पालन को वे किस आदर-भाव के साथ देखते थे?—

भयौ एक नारी व्रत-धारी हरि-कन्त, ताहि
बिन मिले मोहि कहौ कैसे धौं बनति है।
सुन्दर नरिंद रामचन्द जू कौं मुख-चन्द
सेनापति देखि बाढ़ी गाढ़ो अति रति है।
हौं तो याही भाँति प्रानपति की भगति करौं,
सिय तौ सुहाग भाग पूरी बिलसति है।
यह जिय जानि, मेरे जान जानी जानकी के,
मध्य रसना के आप सारदा बसति है।
(४।२५)

सारांश यह है कि यद्यपि सेनापति ने लक्षण-उदाहरण वाली शैली पर नायिका-भेद कथन नहीं किया है; तथापि उन्होंने यथा-स्थान विभिन्न नायिकाओं के सुन्दर उदाहरण अथवा वर्णन लिखे हैं। (और भी देखें दूसरी तरंग के छन्द संख्या १८, २०, २१, २२, २३, २४, ३४, ४१, ५१, ५२, तथा ५६)

'शृंगार-वर्णन' के अन्त में सेनापति ने तत्कालीन लोक-रुचि एवं साहित्यिक परिपाटी के अनुसार 'दूती-वर्णन' भी लिख डाला है। यथा—

(५) काव्य के भाव-पक्ष आन्तरिक स्वरूप की दृष्टि से सेनापति के दो रूप सामने आते हैं—(१) शृंगारी और भक्त ! शृंगार वर्णन में उन्होंने तत्कालीन लोकरुचि और साहित्यिक परम्पराओं का पूरे उत्साह के साथ निर्वाह किया है। प्रकृति-वर्णन उन्होंने उद्दीपन विभाव की दृष्टि से लिखा है तथा उस पर सामाजिक परिस्थितियों की स्पष्ट छाप है। आलम्बन विभाव के अन्तर्गत नायिकाओं के वर्णन पूरे जोश के साथ लिखे हैं। उनके 'शृंगार-वर्णन' में कहीं कहीं अश्लीलता आगई है। लेकिन तत्कालीन वातावरण के अन्तर्गत शृंगार वर्णन में 'अश्लीलत्व' दोष होते हुए भी वास्तव में दोष नहीं माना जाता था।

(६) अश्लीलत्व दोष 'शृंगार-वर्णन' नाम की तरंग की अपेक्षा श्लेष-वर्णन नाम की तरंग में अधिक पाया जाता है। 'श्लेष' लिखने की तत्परता से सम्भवतः उन्हें भद्दी से भद्दी बात कहने में भी संकोच नहीं होता है। (देखें १।६५)

(७) सेनापति का ध्यान संयोग शृंगार की अपेक्षा वियोग-शृंगार की ओर अधिक है। वियोग-वर्णन प्रवास-हेतुक तथा विरह हेतुक है। कहीं कहीं ईर्ष्या हेतुक वियोग भी पाया जाता है। वियोग वर्णन में सेनापति ने मानव प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण प्रदर्शित किया है। लम्बी उड़ान वाले अत्युक्ति पूर्ण छन्द थोड़े ही हैं। विरह व्यथा को उद्दीप्त करने के लिये ऋतु वर्णन से सहायता ली गई है। सेनापति के विरह-वर्णन में संचारी भावों की अपेक्षाकृत कम योजना हुई है। इस कारण वह विशेष प्रभावशाली नहीं हो पाया है।

(८) सेनापति ने राम-कथा लिखकर अपने राम-भक्त होने का परिचय दिया है। सिद्धान्त की दृष्टि से वे गोस्वामी तुलसीदास की परम्परा में आते हैं। वे राम के उत्कट भक्त थे। कविता लिखने के पूर्व उन्होंने राम की वन्दना की है—

सेनापति आनंद घन, रिद्धि सिद्धि मंगल करन।
नाइक अनेक ब्रह्मण्ड कौं, एक राम संतत सरन॥

× × × ×

देव दुख-दंडन, भरत सिर मंडन, वे
वंदौं अघ-खंडन खराऊँ रघुराइ की।

× × × ×

और न भरोसौ, जिय परत खरोसौ, ताही
राम पद पंकज कौं पूरन भरोसौ है।
(कवित्तरत्नाकर ४।१,२,३)

सेनापति ने पूरी राम-कथा न लिखकर अपनी रुचि के अनुसार कथा के कुछ चुने हुए स्थलों का ही वर्णन किया है—

सेनापति यातैं कथा क्रम कौं प्रनाम करि,
काहू काहू ठौर के कवित्त कछू कीने हैं।
(४।६)

(९) 'कवित्तरत्नाकर' की चौथी और पाँचवीं तरंगों में सेनापति का भक्त हृदय मुखरित हो उठा है। वे राम के उत्कट भक्त हैं, कृष्ण तथा शिव से उन्हें विशेष स्नेह है, कृष्ण के लीला-धाम व्रज-वृन्दावन की रज में लोटते रहने की उनकी प्रबल इच्छा है तथा वैष्णव भक्त कवियों की भाँति वे तीर्थ सेवक, गंगा-स्नान आदि विषयों पर आस्था रखते हैं। सारांश यह कि 'शृंगार वर्णन' के अन्तर्गत सेनापति एक पक्के शृंगारी कवि हैं और भक्ति परक रचनाओं में उनकी भक्ति-भावना की पूरी तल्लीनता पाई जाती है; उनकी अनुभूतियों में पूरी सचाई है।

(१०) वहिरंग की दृष्टि से अथवा कलापक्ष के विचार से सेनापति की रचना रीति-ग्रन्थकारों की कोटि में रखी जाएँगी। सेनापति चमत्कारवादी-कवि थे तथा अपनी भाषा को अच्छी तरह सजाने की ओर वे विशेष आग्रहशील थे—

मिल जाती है, तथापि उनका विधिवत् निरूपण सर्व प्रथम भरत मुनिकृत नाट्यशास्त्र में ही मिलता है। उन्होंने वाचिक अभिनय के सहारे चार अलंकारों (उपमा, रूपक, दीपक और यमक) का वर्णन किया है—उपमारूपक चैव दीपकं यमकं तथा अलंकारास्तु विज्ञेयाश्चत्वारो नाटकाश्रयाः। (नाट्यशास्त्र १,७,४३)

अलंकार को प्रधानता देकर विधिवत् साहित्य शास्त्र की रचना करने वालों में भामह पहिले आचार्य हैं। इनका समय ईसा की ५ वीं या ६ वीं शती ठहरता है इनसे भी पहिले कुछ आचार्य रहे होंगे, क्योंकि स्वयं भामह ने राजशर्मा (काव्यालंकार २, १६) मेधावी (२।४०) आदि का उल्लेख किया है, किन्तु उनका कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, केवल काव्यालंकार में उनका नाम मात्र ही शेष है ऐसी स्थिति में पूर्ववर्ती आचार्यों के ग्रन्थ उपलब्ध न होने से भामह को ही अलंकार सम्प्रदाय का सर्वप्रथम प्रतिनिधि माना गया है।

अलंकारों को प्रधानता देते हुए भामह ने स्पष्ट कहा है कि "न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिता मुखम्' (काव्यालंकार १।१३) अर्थात् वनिता (स्त्री) का सुन्दर मुख भी भूषण विना शोभा नहीं देता है। इसी आधार पर आगे चल कर आचार्य केशवदास ने (ईसा का १६ वीं शती) कहा कि—

जदपि सुजाति सुलच्छनी सुवरन सरस प्रवृत्त।
भूषन विनु नहिं राजहीं कविता वनिता मित्त॥

संस्कृत के साहित्य के आचार्य जयदेव पीयूषवर्ष (१३ वीं शती) ने अलंकारों को प्रधानता देते हुए उन लोगों को जो अलंकारों को प्रधानता नहीं देते हैं, खुली चुनौती दी थी कि जो काव्य को अलंकार रहित मानता है, वह अग्नि को उष्णता रहित क्यों नहीं मानता। यथा—

'अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृतीअसौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती' (चन्द्रालोक १।८)

सेनापति के ऊपर भामह और जयदेवपीयूप वर्ग के मतों की छाप स्पष्ट है। यथा—

दूपन कौं करि कै, कवित्त विन भूपन कौं,
जो करै प्रसिद्ध ऐसौ कौन सुर मुनि है।
(१।७)

(१२) सेनापति ने अर्थालंकारों की अपेक्षा शब्दालंकारों की ओर ही विशेष ध्यान दिया है। इससे भी यही स्पष्ट हो जाता है कि सेनापति भापा की वाहरी तड़क-भड़क दिखाने के विशेष हामी थे।

सारांश यह है कि "काव्य के अन्तरंग के विचार से कवित्त-रत्नाकर की फुटकर रचनाएँ भक्त तथा शृंगारी कवियों की रचनाओं के साथ रक्खी जा सकती हैं किन्तु काव्य के वहिरंग की दृष्टि से वे केवल रीति-ग्रन्थकारों की कोटि में ही रखी जाएँगी।" (उमाशंकर शुक्ल द्वारा सम्पादित 'कवित्तरत्नाकर' की भूमिका पृष्ठ संख्या ५०)

अन्त में एक महत्वपूर्ण वात की ओर संकेत कर देना हम अत्यन्त आवश्यक समझते हैं। वह है सेनापति का भारतीय संस्कृति के प्रति प्रेम। मर्यादा का निर्वाह 'भारतीय संस्कृति' आधार स्तम्भ है और सेनापति ने इस ओर पूरा ध्यान दिया है। जैसे—

(अ) पति के प्रति पत्नी के आदर भाव की उन्होंने सर्वत्र रक्षा की है। 'खंडिता' हो जाने पर भी पत्नी अपने पति के प्रति आदर भाव का त्याग नहीं करती है—

मान विन सारौ, सरवस वारि डारौं, लाल
वारौं ए चरन जे चरन परसत हौ।
(२।३३)

इसी प्रकार प्रेमाधिकार के कारण जव पति अपनी प्रियतमा के चरणों में महावर लगाना चाहता है, तो पत्नी तुरन्त ही अपने

प्राणनाथ का हाथ पकड़ लेती है। शील और संकोच के वातावरण में पालित भारतीय कुल-वधू इसे क्यों कर सहन कर सकती है—

हौं कै रस बस जब दीवे कौं महाउर के,
सेनापति स्याम गह्यो चरन ललित है।
चूमि हाथ नाथ के लगाइ रही आँखिन सौं,
कही प्रानपति यह अति अनुचित है।
(२।३६)

(आ) 'रामायण-वर्णन' के अन्तर्गत उन्होंने 'एक पत्नी व्रत की महिमा का पूरे उत्साह के साथ वर्णन किया है। (कवित्त रत्नाकर ४।१८, २३, २५)

(इ) रामचन्द्र जी के द्वारा यज्ञोपवीत एवं ब्राह्मणों के प्रति आदर-भाव प्रकट करा के सेनापति ने भारतीय वर्ण-व्यवस्था की ओर अपनी आस्था व्यक्त की है। देखिए—

आज जामदग्नि! जानतेऊ एक घरी माँफ,
होती जौ न ब्यारी यह जिरह जनेऊ की।
(४।२७)

तथा—

सेनापति ऐसे राम-बान तऊ विप्र हेत,
देखत जनेऊ खैंचि राखैं निज बल कौं।
(४।२८)

उन दिनों जब कि मुसलमानों के प्रभाव के कारण हिन्दू-समाज अपनापन भूलता जा रहा था, इस प्रकार की बात कहना साधारण काम न था। इससे स्पष्ट है कि सेनापति को अपनी धर्म-व्यवस्था में पूर्ण विश्वास था और उनके संस्कार इतने सुदृढ़ थे कि वे अपनी बात को निस्संकोच कह सकते थे। सेनापति स्वयं ब्राह्मण थे। अतएव ब्राह्मण-वर्ण के प्रति आदर प्रदर्शित करना साधारण साहस का काम न था। मामूली व्यक्ति तो इसी सोच में पड़ जाता

कि 'अगर कहीं किसी ने साम्प्रदायिक अथवा फिरका परस्त क
दिया तो ?'

(ई) भारतीय संस्कृति भगवद्—भक्ति को जीवन का चरम लक्ष्य मानती है। सेनापति भी इसी मत के अनुययी थे—

जैसौ हनूमान जान्यौ भजन कौ रस, जिन
राम के भजन ही लौं जीवौ माँग्यौ अपनौ।
(४।६६)

कामना कौं कामधेनु, रसना कौं विसराम,
धरम कौं धाम राम-नाम जग जान्यौ है।
(४।७५)